प्रेम प्रपंच

तुर्गनेव

सस्ता साहित्य मण्डल

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन
एन–77, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 23310505, 41523565
Visit us at : www.sastasahityamandal.org
E-mail : manager@sastasahityamandal.org

प्रेम-प्रपंच

लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार तुर्गनेव की 'फाउस्त' नामक
भावपूर्ण रचना का हिन्दी-रूपान्तर

•

अनुवादक
जगन्नाथप्रसाद मिश्र
संपादक
बनारसीदास चतुर्वेदी

•

सस्ता साहित्य मण्डल

2009

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN 978-81-7309-371-5

•

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

एन–77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली–110001

फोन : 23310505, 41523565

Visit us at : www.sastasahityamandal.org

E-mail : manager@sastasahityamandal.org,
sales@sastasahityamandal.org

शाखा : 126, जीरो रोड, इलाहाबाद–211003

फोन : 0532–2400034

•

संस्करण : 2009

प्रतियां : 1100

मूल्य : रु. 25.00

•

मुद्रक

इण्डिया बाइंडिंग हाऊस

ए–98, सेक्टर 65, नोएडा

प्रकाशकीय

भारतीय तथा विश्व-साहित्य के कई श्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद हम 'मण्डल' से प्रकाशित कर चुके हैं। उस माला की यह एक नई कड़ी है

इस उपन्यास के लेखक तुर्गनेव से हिन्दी के पाठक भली-भांति परिचित हैं। उनकी बहुत-सी कहानियों और उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी हुए हैं।

प्रस्तुत उपन्यास तुर्गनेव की बड़ी मार्मिक रचना है। यह पत्रों के रूप में लिखी गई है। पाठक ज्यों-ज्यों इन पत्रों को पढ़ता जाता है, उसकी रुचि बढ़ती जाती है और अन्त में तो उसे ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जिसमें एक ओर व्यथा है तो दूसरी ओर सहानुभूति। उपन्यास के मुख्य पात्रों के साथ पाठक गहरी आत्मीयता अनुभव करता है।

हम आशा करते हैं कि यह उपन्यास सर्वत्र चाव से पढ़ा जायेगा।

इस उपन्यास के अनुवाद को सुधारने में हिन्दी के अनन्य प्रेमी रूसी विद्वान् श्री पी० ए० बारान्निकोव ने बड़ा परिश्रम किया है। हम उनके आभारी हैं।

—मंत्री

भूमिका

सन् १९२० की बात है। शान्तिनिकेतन में योंही ठलुआ बैठा हुआ था। सोचा, चलो पुस्तकालय में से कोई पुस्तक ही ले आऊं। अकस्मात् तुर्गनेव का कोई उपन्यास हाथ लग गया। उपन्यासों के पढ़ने का मैं उतना ही विरोधी था, जितनी कि इस पुस्तक 'प्रेम-प्रपंच' की नायिका वेरा ! वह पुस्तक शायद 'पिता और पुत्र' (फादर्स एण्ड संस) थी, जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेठ उपन्यासों में की जाती है, पर उस समय मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं था। पुस्तक को पढ़ना प्रारम्भ किया। इतनी हृदयग्राही निकली कि समाप्त किये बिना उसे न छोड़ सका। शायद ही ऐसा कोई सहृदय पाठक हो, जिसका हृदय उस पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों को पढ़कर द्रवित न हो जाय। उस पुस्तक को पढ़कर तुर्गनेव और उनकी रचनाओं से अत्यन्त प्रेम हो गया। प्रथम दृष्टि में प्रेम शायद इसी को कहते हैं। तुर्गनेव के जो ग्रन्थ मुझे मिले, उन्हें पढ़ गया। आखिरकार एक पुस्तक-विक्रेता से प्रार्थना कर तुर्गनेव की सम्पूर्ण ग्रन्थमाला मंगाई और उधार लेकर सारे ग्रंथ पढ़े। अब जब किसी अन्य उपन्यासकार की रचना पढ़ता हूं तो तुर्गनेव के मुकाबले में वह विशेष जंचती नहीं। चाहे कुछ लोग इसे पक्षपात ही कहें, पर मेरा अबतक तो यही विचार है। ऐसे साहित्य-प्रेमी सज्जनों को जानता हूं, जो पहले विक्टर ह्यूगो इत्यादि के बड़े प्रेमी थे, पर तुर्गनेव के ग्रन्थों को पढ़ने के बाद वे भी इसी परिणाम पर पहुंचे। बहुत वर्ष पहले 'त्यागभूमि' में श्री जवाहरलाल नेहरू का एक संक्षिप्त जीवन-चरित छपा था। उसमें लेखक ने लिखा था कि श्री जवाहरलालजी तुर्गनेव के बड़े प्रेमी हैं और वह उन्हें टाल्सटाय की अपेक्षा उत्तमतर कलाकार मानते हैं। यह पढ़कर बड़ा हर्ष हुआ।

मेरी यह हार्दिक अभिलाषा बहुत दिनों से थी कि तुर्गनेव की रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में किया जाय। आत्म-विश्वास की कमी के कारण प्रकाशकों से कहने का साहस नहीं हुआ। शायद कोई प्रकाशक यह जवाब दे दे–"तुम्हें कोई चीज पसन्द है, इसलिए उसका अनुवाद हिन्दी में होना चाहिए, यह तर्क तो समझ में नहीं आता।" इस आशंका से किसी को लिखा भी नहीं। आज

तुर्गनेव की यह कृति पाठकों का सेवा में आ रही है, इसकी मुझे खुशी है।

इस रचना पर लेखक के व्यक्तित्व तथा कला-कौशल की गहरी छाप है। मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण इस छोटी-सी कहानी में जिस खूबी के साथ तुर्गनेव ने किया है, वह देखते ही बनता है। तूलिका, रंग और कागज तो प्रत्येक चित्रकार के पास रहते हैं, पर प्रशंसा उसी की जाती है, जो इनके यथोचित प्रयोग से बारीक-से-बारीक रेखाओं द्वारा प्रभावोत्पादक चित्र खींच सके। कहीं पर थोड़ा-सा भी रंग गहरा हो जाने से आंखों को खटकने लगता है और सम्पूर्ण चित्र के सामंजस्य में बाधा पहुंचती है। प्रेम-प्रपंच' को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ जाइये, क्या मजाल कि कहीं एक वाक्य भी ऐसा आपको दीख पड़े, जो निरर्थक हो और जिससे कहानी की कोमलता को आघात पहुंचे।

इस कहानी में दो मित्रों का पत्र-व्यवहार है, या यों कहिये कि मित्र ने अपना दिल खोलकर दूसरे मित्र के सामने रख दिया है। पत्र-लेखन भी एक कला है और पत्रों पर अपने व्यक्तित्व की छाप डालना प्रत्येक लेखक का काम नहीं है। तुर्गनेव इस कला में बड़े कुशल हैं।

पतन का मार्ग कितना ढालू है, यह बात इस कहानी को पढ़कर अच्छी तरह प्रकट हो जाती है। आदमी के पुराने कुसंस्कार किस प्रकार थोड़ा-सा प्रोत्साहन पाकर फिर जाग्रत हो जाते हैं और किस तरह वे उसे कुपथ की ओर घसीट ले जाते हैं, प्रेम-प्रपंच' इसका सुन्दर दृष्टान्त है।

कुछ वर्ष पहले 'प्रभा' में 'फिसलन' शीर्षक एक नोट पढ़ा था। उसमें लिखा था कि जिस समय पत्ता खटका और विश्वामित्र ने अपनी समाधि भंग करके आंखें खोलीं, बस उसी समय शकुंतला का जन्म हो गया। बहुत वर्षों बाद मुझे नवीनजी से पता लगा कि वह नोट उनका लिखा हुआ था। पत्र-लेखक के पतन का और वेरा के सर्वनाश का प्रारम्भ उसी समय हो गया जबकि इस कहानी के नायक के हृदय में एकान्तवास की भावना का परित्याग करके पर-स्त्री वेरा के साथ बातचीत करने के लिए रस उत्पन्न हुआ। इस कथा के नायक ने अपनी पहली चिट्ठी में लिखा था:

• • • मुझे इस बात से बहुत खेद होगा, यदि इस अवधि के अन्दर मेरा कोई पड़ोसी मुझसे मिलने का विचार करे; किन्तु मुझे इस बात की विशेष चिन्ता नहीं है, क्योंकि मेरे पास में यहां कोई मेरा पड़ोसी भी है नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे मनोभाव को समझ जाओगे। तुम खुद अपने अनुभव से यह जानते हो कि एकान्तवास प्राय: कितना लाभप्रद हुआ करता है। चारों ओर चक्कर काटने के बाद अब मुझे इस एकान्तवास की बड़ी आवश्यकता है। (पृष्ठ-२५)

यदि नायक महोदय अपने उस विचार पर दृढ़ रहते तो यह दुर्घटना न घटती। पर भावी प्रबल है। टहलने के लिए बाहर जाते समय उन्हें वेरा का पति मिला। उससे अपनी पुरानी परिचिता वेरा का नाम सुनकर पत्र-लेखक के हृदय में उससे मिलने की उत्कंठा उत्पन्न हुई। एकान्तवास का विचार दूर हो गया। इसके बाद जो फिसलन प्रारम्भ हुई, उसका अन्त वेरा के जीवन के अन्त के साथ ही हुआ। इस कहानी के नायक के पुराने संस्कार भी अच्छे नहीं थे। स्वयं उन्होंने तीसरी चिट्ठी में लिखा था:

अच्छा, इन गतिविधियों के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है? यही न कि उस स्त्री का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा है, मैं उसके प्रेम में फंसने जा रहा हूं, इत्यादि-इत्यादि?

प्यारे भाई, यह सब फिजूल की बात है। हरेक चीज़ की कोई हद होती है। मैं काफी मूर्ख बन चुका हूं, अब अधिक बनने की जरूरत नहीं है। मेरी जैसी उम्र में अब कोई नये सिरे से जीवन आरम्भ नहीं कर सकता। उसके सिवा मैंने इस प्रकार की स्त्रियों की कभी परवा नहीं की। सच कहूं, मुझे ऐसी स्त्रियां पसंद थीं–

मैं झिझकता हूं, मन को दर्द है,
क्योंकि अपने बुतों से शर्म आती है।।" (पृष्ठ ५१)

वेरा के मिलने से कुसंस्कार की वह चिनगारी, जो दस वर्ष से विस्मृति की राख के नीचे छिपी पड़ी थी, फिर वह जाग्रत हो गई। इस चिनगारी

के अस्तित्व का ज्ञान नायक को तभी हो गया था, जब उसने गेते का प्रेम-काव्य 'फाउस्त' पढ़ने के बाद पहली चिट्ठी में अपने मित्र को लिखा था:

• • • मुझे ऐसा मालूम होता है कि यद्यपि मुझे अपने इस जीवन में बहुत अनुभव प्राप्त हुए हैं, फिर भी मित्र गोरत्सिओ, संसार में अभी ऐसी कोई चीज है, जिसका अनुभव मुझे नहीं हुआ है और 'वह चीज' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। (पृष्ठ २६)

उधर इस कहानी की नायिका वेरा पर, जिसने पहले कभी प्रेम-काव्य अथवा उपन्यास नहीं पढ़े थे, 'फाउस्त' के सुनने और पढ़ने से विचित्र प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव ने उत्तरोत्तर बढ़कर किस प्रकार अनुचित प्रेम का रूप धारण किया, यह बात तुर्गनेव ने बड़ी खूबी के साथ दिखलाई है। चौथी चिट्ठी में पत्र-लेखक और वेरा के बीच इस विषय में जो बात-चीत हुई है, वह ध्यान देने योग्य है:

मैं घूमकर खिड़की के पास गया और वहां वेरा नीकोलाएव्ना को देखा। कंधे पर छोटी-सी छतरी और सिर पर एक हल्का सफेद रूमाल रखे हुए वह टहल रही थी। मैं फौरन बाहर चला गया और उससे 'नमस्कार' कहा।

उसने कहा—"मैं रात-भर सोई नहीं, मेरा सिर दुःख रहा था, इसलिए मैं बाहर हवा में चली आई, जिससे मेरा सिर-दर्द दूर हो जाए।"

"यह कल के पढ़ने का नतीजा तो नहीं है? मैंने पूछा।

"और क्या? मैं इस तरह पढ़ने की आदी नहीं हूं। आपकी पुस्तक में कुछ ऐसी बातें हैं, जो मेरे दिमाग से बाहर ही नहीं निकलतीं। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो वे विचार मेरे सिर को चकरा रहे हों" ऐसा कहकर उसने अपने माथे पर हाथ रखा।

मैंने कहा, "यह तो खूब रही ! परन्तु मैं आपसे जो बात कहना चाहता हूं और जो मुझे पसन्द नहीं है, वह यह है कि कहीं ऐसा न हो

कि इस अनिद्रा और सिर दर्द के कारण आप इस प्रकार के विषयों के पठन-पाठन से ही विमुख हो जायं।"

"क्या आप ऐसा खयाल करते हो?' यह कहकर वह चमेली की एक टहनी तोड़ती हुई आगे बढ़ी, "ईश्वर ही जानता है। मैं सोचती हूं कि एक बार जिसने इस रास्ते पर पांव रखा, फिर उसके लिए वापस लौटना असम्भव है।" (पृष्ठ ६१-६२)

सीधे-सादे शब्दों में इसका अर्थ था–"प्रेम-पयोनिधि में धंसिकै हँसिकै कढ़िबौ हँसी-खेल नहीं फिर", पर इस कहानी के नायक महोदय इसी आशा में रहे कि इस प्रेम-पयोनिधि से चाहे जब निकल जाएंगे ! उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें कितनी ही बार सावधान भी किया, पर उन्होंने अन्तःकरण की उस ध्वनि की उपेक्षा की। कुपथ के मार्ग पर जाते समय मनुष्य की आत्मा किस प्रकार बार-बार चेतावनी देती है और आदमी बार-बार किस तरह अपने-आपको धोखा देता जाता है, इसके दृष्टान्त 'प्रेम-प्रपंच' में मिल सकते हैं। तीसरी चिट्ठी में नायक ने अपने मित्र को लिखा था:

• • • हरेक चीज की एक हद होती है। मैं काफी मूर्ख बन चुका हूं, अब अधिक बनने की ज़रूरत नहीं है। (पृष्ठ ५०)

चौथी चिट्ठी में उसने लिखा था:

• • • तुम्हारे मित्र के मन की अजीब दशा हो रही है। मैं जानता हूं कि यह सबकुछ गुज़र जायगा। और अगर यह नहीं भी गुज़रा, तो इससे होगा ही क्या ? यह नहीं गुज़रेगा, बस, इतना ही न ?" (पृष्ठ ६४)

इसके बाद फिर उसकी अन्तरात्मा ने आवाज दी कि किस कुमार्ग पर जा रहे हो ? यह खतरे से खाली नहीं है। आवाज पहले से कहीं अधिक जोरदार थी। स्वयं नायक ने अपने मित्र को पांचवीं चिट्ठी में लिखा था:

तुम पूछोगे कि आखिर इन सब बातों का क्या नतीजा होगा? मैं तो सचमुच विश्वास करता हूं कि कुछ नहीं। मैं सितम्बर तक यहां रहकर

आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करूंगा और उसके बाद चला जाऊंगा। प्रारम्भ के कई महीनों में मुझे अन्धकारपूर्ण और सुनसान मालूम पड़ेगा, किंतु धीरे-धीरे मैं इसका अभ्यस्त हो जाऊंगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि एक पुरुष और एक युवती स्त्री के बीच किसी भी प्रकार का सम्बन्ध कितना खतरनाक है। किस प्रकार अदृश्य रूप में एक भावना के बाद दूसरी भावना आती रहती है। • • • यदि मुझे इस बात का निश्चय नहीं होता कि हम दोनों पूर्णतया स्थिर-चित्त और निश्चिन्त हैं तो निश्चय ही मुझमें इतनी शक्ति अवश्य है कि मैं इस सम्बन्ध को तोड़ देता। (पृष्ठ ६९)

सातवीं चिट्ठी में मामला बिलकुल साफ हो गया है। नायक ने लिखा है:

• • • ओ मेरे प्यारे दोस्त, अब अधिक समय तक मैं अपनी भावनाएं तुम से छिपाकर नहीं रख सकता। • • • मैं कितना दु:खी हूं ! मैं उसे कितना प्रेम करता हूं ! तुम क्या सोच सकते हो कि इस घातक शब्द को लिखते हुए मैं कितनी कटुता का अनुभव कर रहा हूं। शब्दमात्र से कंपकंपी आ जाती है। मैं बालक नहीं हूं और अब युवक भी नहीं हूं और अब युवक भी नहीं रहा। • • • मैं यह जानता हूं कि मेरी अवस्था इस समय लगभग चालीस वर्ष की है। वेरा दूसरे की स्त्री है। वह अपने पति को प्यार करती है। मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूं कि जिस दुख:मयी भावना ने मेरे ऊपर अपना अधिकार कर लिया है, उसका परिणाम गुप्त वेदना और जीवन-शक्ति के नाश के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। (पृष्ठ ८२)

एक बार फिर विवेक ने ज़ोर मारा और जब वेरा ने अपना प्रेम प्रकट करने के बाद उससे पूछा, "बोलिये, अब आपका क्या इरादा है ? तो नायक ने यही उत्तर दिया "मैं एक ईमानदार मनुष्य की तरह कर्त्तव्यपालन करना चाहता हूं, यहां से चले जाना चाहता हूं। (पृष्ठ ९३)

पर यह न हुआ। जो कुछ हुआ, उसका वृत्तान्त पाठक पढ़ेंगे ही। वेरा

की माता की मूर्ति का दीख पड़ना भी मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भूत-प्रेतों के विषय में जो संस्कार वेरा के मस्तिष्क में जमे हुए थे, उन्होंने उस समय उग्र धारण कर लिया।

वेरा की मृत्यु और नायक की अपराधपूर्ण मनोवृत्ति का चित्र तुर्गनेव ने बड़ी खूबी के साथ खींचा है। वेरा की मृत्यु का जिस कोमलता के साथ उन्होंने वर्णन किया है, वह भी पढ़ते ही बनता है–

हां, तो वेरा तो नष्ट हो गई और मैं ज्यों-का-त्यों ही बना रह गया ! मुझे याद है कि जब मैं बालक था, मेरे घर में एक सुन्दर बर्तन था, जो पारदर्शक, स्वच्छ, श्वेत पत्थर का बना हुआ था। उसकी स्वच्छता पर कहीं ज़रा धब्बा नहीं था। एक दिन अकेले में मैंने जिस चीज पर वह बर्तन रखा हुआ था उसे हिलाना शुरू किया। अकस्मात् वह बर्तन गिर गया और चूर-चूर हो गया। मैं मारे डर के सुन्न हो गया और उस बर्तन के टुकड़ों के सामने निश्चल होकर खड़ा रहा। इतने में मेरे पिता वहां आये, मुझे देखा और मुझसे कहा–"देखो तो, तुमने यह क्या कर डाला ? अब वह सुन्दर बर्तन फिर कहां मिलेगा ? अब उसकी मरम्मत भी नहीं हो सकती।" मैं पश्चात्ताप करने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मैंने कोई घोर अपराध किया हो।

"लड़कपन पार करके मैं बड़ा हुआ और अब मैंने बिना विचारे उस बर्तन से हज़ार गुने अधिक कीमती बर्तन को तोड़ डाला!" (पृष्ठ १०४-५)

कहने का ढ़ंग कितना सरल, पर कितना मार्मिक है !

अन्तिम पत्र का अन्तिम हिस्सा वास्तव में दुखित हृदय की एक गम्भीर आह है:

अन्त में मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि गत वर्षों के अनुभव से मैंने जो विश्वास प्राप्त किया है, वह यह है कि जीवन हँसी-खेल या आमोद-प्रमोद की वस्तु नहीं और न जीवन भोग की वस्तु है। जीवन कठोर परिश्रम है। त्याग–अनवरत त्याग ही इस जीवन का रहस्यपूर्ण अर्थ है,

इस समस्या का समाधान है। मनुष्य की चिर-पोषित महत्वाकांक्षाएं और कल्पना-तरंगें कितनी ही महान् क्यों न हों, किन्तु उनकी पूर्ति नहीं, बल्कि कर्त्तव्य की पूर्ति मनुष्य के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। बिना अपने को कर्तव्य रूपी लौह श्रृंखला से आबद्ध मनुष्य अपने जीवन के अन्त तक बिना किसी पतन के पहुंच नहीं सकता।" (पृष्ठ १०६)

इस कथा का यही भीतरी उपदेश है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो ये उद्‌गार किसी भुक्तभोगी के हृदय से ही निकले हुए हों। पाप से बचने का सर्वोत्तम मार्ग यही है कि उससे भाग जाय। उसके साथ खेल करना खतरनाक है। सच्ची कला इसीमें है कि वाचक को यह प्रतीत न हो कि लेखक गुरु बनकर हमें उपदेश दे रहा है और उपदेश का प्रभाव उस पर पड़ जाय। इस दृष्टि से तुर्गनेव अत्यन्त उच्च कोटि के कलाकार सिद्ध होते हैं।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

तुर्ग नेव

(संक्षिप्त परिचय)

तुर्गनेव का जन्म २८ अक्तूबर १८१८ में आर्यल नामक स्थान में हुआ था। उनकी माता का नाम वार्वरा पैट्रोवना और पिता का नाम लेफ्टिनेन्ट तुर्गनेव था। माता के यहां काफी धन-संपत्ति थी। हजारों एकड़ भूमि और पांच हजार दास-दासियां थीं। पिता का शरीर गठा हुआ और कंधे चौड़े थे। वह लम्बे कद के फौजी आदमी थे। माता भोग-विलास-प्रिय और सदा अस्वस्थ रहनेवालीं थीं। तुर्गनेव के शरीर का गठन तो अपने पिता के तुल्य था, पर स्वास्थ्य पर माता की अस्वस्थता का जबरदस्त प्रभाव पड़ा था।

चार वर्ष की उम्र में तुर्गनेव को अपने माता-पिता के साथ जर्मनी, फ्रांस और स्विट्‌जरलैण्ड आदि देशों की यात्रा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था तक तुर्गनेव को ग्राम्य जीवन व्यतीत करना पड़ा।

बाल्यावस्था में भी तुर्गनेव में चीजों के सौंदर्य अथवा कुरूपता की जांच करने का गुण दिखाई देता था। आठ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने एक नौकर के लड़के के साथ अपने घर की पुरानी अलमारी में से रूसी भाषा की कविता की कुछ किताबें चुराकर उन्हें पढ़ना प्रारंभ कर दिया।

नौ वर्ष की उम्र में तुर्गनेव अपने माता-पिता के साथ मास्को चले आये और वहां वह एक छात्रालय में भर्ती करा दिये गए। यहीं पर सन् १८२९ में उन्होंने अंग्रेजी भाषा का अध्ययन प्रारंभ किया। आगे चलकर अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण उन्हें शेक्सपीयर, शेली, कीट्‌स और बायरन इत्यादि कवियों की कविता का आनंद लेने का अवसर मिला। इसके बाद घर पर ही पढ़कर उन्होंने मास्को-विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा दी। उस समय उनकी उम्र १४ वर्ष की थी। इसके बाद विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। वहां उनका मुख्य विषय था इतिहास और दर्शनशास्त्र। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रति उनके हृदय में विशेष प्रेम था, इसलिए साथ के लड़के उन्हें मज़ाक में

'अमरीकन' कहा करते थे। इसके बाद वह सेन्ट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। इन्हीं दिनों उनके पिता की मृत्यु हो गई। उस समय उनकी माता इटली में स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए गई हुई थीं।

सेन्ट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में पढ़ने के कुछ वर्ष बाद तुर्गनेव बर्लिन (जर्मनी) पढ़ने के लिए गये। तीन वर्ष तक वहां रहकर उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की और फिर दर्शनशास्त्र पढ़ना शुरू किया। यहीं पर उनकी मुलाकात सुप्रसिद्ध अराजकवादी बाकूनिन से हुई और दोनों में घनिष्टता भी हो गई।

दर्शन-शास्त्र की परीक्षा में वह बड़ी योग्यतापूर्वक पास तो हो गये, पर उनका मन पढ़ने में नहीं लगता था। उनकी रुचि डिग्रियों की ओर बिलकुल नहीं थी। घर से माता के पास से जो रुपया आता था, वह उसे नाटक देखने में उड़ा देते थे और अपने मित्र बाकूनिन के कर्जदारों को भी दे दिया करते थे। बर्लिन में तुर्गनेव कभी किसी प्रसिद्ध साहित्यिक क्लब में बातचीत करते हुए पाये जाते थे तो कभी किसी प्रसिद्ध अभिनेत्री के साथ भोजन करते हुए।

तुर्गनेव ने सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र में कविता करना प्रारंभ कर दिया था। उनकी माता इससे बड़ी प्रसन्न हुई और अपने लड़के को बड़ी बधाई भी दी।

तुर्गनेव की प्रथम पुस्तक 'एक शिकारी के भ्रमण-वृत्तान्त' में रूस के ग्राम्य जीवन के दृश्य बड़ी करुणाजनक भाषा में दिखलाए गए थे। इसमें दास-दासियों की दुर्दशा का चित्र छोटी-छोटी कहानियों द्वारा ऐसी सहृदयता के साथ खींचा गया था कि उन्हें पढ़कर जनता का हृदय द्रवित हो गया। रूस के ज़ार से लेकर साधारण पाठकों तक ने इस पुस्तक को पढ़ा और गुलामों की दशा पर चार आंसू बहाये। इसमें संदेह नहीं कि वहां की दासत्व प्रथा को बन्द कराने में इस पुस्तक ने बड़ी मदद दी थी। तुर्गनेव ने एक बार कहा था—"खुद रूसी सम्राट अलेक्ज़ेण्डर ने यह खबर मेरे पास भिजवाई थी कि दासत्व प्रथा को बन्द करने में अन्य कारणों के साथ एक कारण मेरी

पुस्तक 'एक शिकारी के भ्रमण-वृतान्त' का पढ़ना भी था।" इस पुस्तक ने रूसी साहित्य-संसार में उनकी धाक जमा दी और उनके उत्साह को दुगुना कर दिया। इस पुस्तक की कहानियां पत्रों में पहले अलग-अलग प्रकाशित हुई थीं।

तुर्गनेव के सभी प्रकाशित ग्रंथों का अनुवाद अंग्रेजी में हो गया है। यह ग्रंथ-माला विलियम हीनमेन, लंदन से मिल सकती है। अंग्रेजी में अनूदित ग्रंथों के नाम हैं:

१. रूडिन २. ए हाउस ऑफ जेंटिलफोक ३. ऑन दी ईव ४. फादर्स एण्ड संस ५. स्मोक ६. वर्जिन सॉइल ७. ए स्पोट्समेन्स स्कैचेज, इत्यादि।

ये सब ग्रंथ सत्रह भागों में प्रकाशित हुए हैं।

मानव-स्वभाव की भिन्न-भिन्न दशाओं का चित्रण करने में जिस हद तक तुर्गनेव सफल हुए हैं, उस हद तक पहुंचना किसी भी अच्छे-से-अच्छे लेखक के लिए अत्यन्त कठिन है। उन्नीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में उनकी गणना की जाती है और किसी-किसी का तो यह भी मत है कि शताब्दी के सर्वोत्तम कलाकार का पद तुर्गनेव को ही मिलना चाहिए।

उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्हें पढ़ते हुए कभी जी नहीं उकताता। उन्हें पढ़ना मानो एक अत्यन्त सदय महापुरुष से वार्त्तालाप करना है।

तुर्गनेव की रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह गंभीर अनुभव के बाद और अपने संस्कृत हृदय से।

सितम्बर सन् १८८३ में रूस का यह महान लेखक इस संसार से विदा हो गया।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रेम प्रपंच

●

पहली चिट्ठी

म...ओए ग्राम,
६ जून, १८५०

प्रिय मित्र,

मुझे यहां आये तीन दिन हो गये। जैसा कि मैंने तुमसे वादा किया था, आज मैं तुम्हारे पास कुछ लिखकर भेजना चाहता हूं। आज सबेरे से ही मजेदार बूंदाबांदी हो रही है। इस समय मैं घर से कहीं बाहर नहीं निकल सकता और तुम्हारे साथ इस पत्र द्वारा थोड़ी-सी बातचीत करना चाहता हूं। यहां मैं अपने पुराने घर में ठहरा हुआ हूं, उसी घर में, जिसे यह कहते भी डर मालूम होता है कि मैं पिछले नौ साल से छोड़े हुए था। सचमुच, जैसा तुम खयाल कर सकते हो, मैं अपने को एकदम दूसरा ही आदमी पाता हूं। वास्तव में मैं बिलकुल ही बदल गया हूं। मेरी बैठक में मेरी परदादी के समय का झांई पड़ा हुआ एक छोटा शीशा था, जिसके चौखटे पर अजीब ढंग की नक्काशी का काम हो रहा था, और जिसके सम्बन्ध में तुम कहा करते थे कि सौ बरस पहले इसने क्या देखा होगा, क्या तुम्हें उसकी याद है ? यहां पहुंचते ही मैं इस शीशे के पास गया और उस समय मुझे बड़ी परेशानी अनुभव हुई। मुझे एकाएक यह मालूम पड़ा कि पिछले कई सालों में मैं कितना बूढ़ा हो गया हूं और साथ ही कितना बदल गया हूं, लेकिन यह परिवर्तन अकेले मुझमें ही हुआ हो, सो बात नहीं। मेरा छोटा-सा मामूली घर भी, जो बहुत पहले से ही पुराना और बुरी हालत में था, अब मुश्किल से खड़ा रह सकेगा। इस समय वह

बिलकुल खस्ता हालत में है और ऐसा जान पड़ता है मानो वह जमीन के अन्दर धंसा जा रहा हो। मेरी प्रिय गृह-रक्षिका वेसी लिवना (जिसे तुम भूले नहीं होगे, और जो तुम्हें बढ़िया मुरब्बा दे-देकर खुश रखा करती थी) इस समय बिलकुल बुढ़ा गई है। मुझे देखकर वह पुकार नहीं सकी और न उससे जोर से रोते ही बना। वह सिर्फ शोक से सिसकने लगी, जिससे उसका गला भर आया। आखिर वह लाचार होकर कुरसी में धंस-सी गई और अपना हाथ हिलाने लगी। तिरेन्ती में अब भी कुछ तेज बाकी रह गया है। वह पहले के समान सीना तान करके चलता है और चलते समय अपने पांव को घुमाता है। अब भी वह उसी पीले रंग के मजबूत कपड़े का पायजामा और भेड़ के चमड़े का ऊंची एड़ीवाला चरचराता हुआ जूता पहनता है। इस जूते के फीते के फूलों से तुम्हारा मन मुग्ध हो जाता था। इस समय उसके दुबले-पतले पांव में वही पायजामा ढीला लटकता हुआ किस तरह फटफटा रहा है ! उसके बाल कितने सफेद हो गये हैं ! उसका चेहरा सिकुड़कर मुट्ठी-भर का रह गया है। जिस समय वह मुझसे बातें करता है, जब वह पासवाले कमरे में नौकरों को हिदायत देना शुरू करता है और उन्हें हुक्म देता है, तो मुझे हँसी आ जाती है और मैं उसकी हालत पर तरस खाने लगता हूं। उसके सब दांत गिर गये हैं और वह सिसकती हुई आवाज में घुनघुनाकर बोलता है। उधर बगीचे की दशा देखकर आश्चर्य होता है। बबूल, बकाइन और मधुचूष के छोटे-छोटे पौधे—क्या तुम्हें याद हैं। कि हम दोनों ने मिलकर उन्हें रोपा था-इस समय बढ़कर खूब घने झाड़ीदार पेड़ बन गए हैं। बेर्योजा और क्लयोन आदि के पेड़ भी बढ़कर लम्बे हो गये हैं और

फैले हुए दीख पड़ते हैं। लींपा के वृक्षों के कुंजों की शोभा विशेष दर्शनीय मालूम होती है। मैं इन कुंजों को प्यार करता हूं। मुझे उनका सुकुमार भूरा और हरा रंग तथा उनकी महराबदार शाखाओं के नीचे भीनी-भीनी महक प्यारी मालूम पड़ती है। मैं यहां की काली मिट्टी पर, जिसमें बालू का कहीं नामोंनिशान नहीं, रोशनी के बदलते जालीदार मण्डल को प्यार करता हूं। मेरा प्रिय दुब का पौधा इस समय बढ़कर एक लहलहाते वृक्ष के रूप में हो गया है। कल दिन में मैंने उसकी छाया में एक बेंच पर बैठकर एक घण्टे से अधिक समय बिताया। इस प्रकार बैठे रहने में मुझे बड़ा आनन्द आया। मेरे चारों ओर घास खूब बढ़ी हुई थी।

आस-पास की सभी चीजों पर मुलायम्र सुनहली रोशनी पड़ रही थी। इस रोशनी का प्रवेश छाया के अन्दर भी हो रहा था। चिड़ियों की नाना प्रकार की बोलियां बहुत ही मधुर लगती थीं। मुझे उम्मीद है कि तुम इस बात को नहीं भूले होंगे कि चिड़ियों से मुझे खास प्रेम है। पण्डूक बिना रुके हुए निरन्तर कांव-कांव कर रहे थे। समय-समय पर श्यामा पक्षी की सीटी की-सी आवाज सुन पड़ती थी। ज्याबलिक अपने मधुर मन्द राग में गा रहे थे। द्रोज़्द आपस में झगड़ रहे थे और चटकार रहे थे। कोयल दूर से ही अपनी सुरीली तान छेड़ रही थी। बीच-बीच में एकाएक कठफोड़ा अपनी तेज चुभती हुई आवाज में पागल जैसा बोल उठता था। मैं देर तक इस दबी हुई मिश्रित आवाज को सुनता रहा। वहां से हटने की इच्छा नहीं हाती थी। उस समय मेरा हृदय शिथिल हो रहा था. और करुणा के भावों से भरा हुआ मालूम पड़ता था।

केवल बगीचे की ही हालत बदली हो, सो नहीं। मुझे बराबर ऐसे हट्टे-कट्टे सुघड़ जवान लड़के मिलते हैं, जिन्हें मैं अपने पुराने परिचित छोटे लड़कों के रूप में इस समय नहीं पहचान सकता। तुम्हारा प्रिय तिमोशा इस समय तिमोफेई के रूप में इतना बदल गया है, जिसको तुम कभी सोच भी नहीं सकते। उन दिनों तुम्हें उसकी तन्दुरुस्ती के बारे में आशंका थी और तुम कहा करते थे कि इसे क्षय हो जाएगा, परन्तु इस समय तुम्हें उसके नंकीन कपड़े के कोट की तंग आस्तीनों से निकले हुए विशाल एवं मजबूत भुज-दण्डों को और उसके सारे बदन पर उभरे हुए मजबूत गोल पुट्ठों को देखना चाहिए। अपनी सांड जैसी गर्दन, उन्नत मस्तक और सुन्दर घुंघराले बालों से वह फरनेजी गेरकुलेस के समान ताकतवर दीखता है। उसके चेहरे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है और गोलाई भी अधिक नहीं बढ़ी है। उसकी पहले जैसी मुस्कराहट, जिसे तुम हँसी में मुंह फाड़ना कहा करते थे, इस समय भी मौजूद है। मैंने उसे अपने यहां नौकर रख लिया है। मैंने अपने पेतेर्बुर्ग[1] वाले नौकर को मास्को में ही छोड़ दिया। सचमुच उसे इस बात में रुचि थी कि किसी तरह ऐसा अवसर मिले, जिससे मुझे शर्मिन्दा होना पड़े और मैं उसके पेतेर्बुर्ग के शिष्टाचार को श्रेष्ठ समझूं। मेरे उन कुत्तों में अब एक भी नहीं रह गया है। वे एक-एक करके सब चल बसे। नेफका उन सबमें अधिक दिन तक जीती रही, किन्तु जिस तरह अरगोस को डलिस्सा को देखने का मौका मिला, वैसे वह मेरे आने तक जिन्दा नहीं रह सकी। नेफका के भाग्य में यह नहीं बदा था कि वह एक बार फिर अपने मालिक

१. पीटर्सबर्ग

और शिकार के साथी को अपनी ज्योतिहीन आंखों से देख सके, परन्तु शवका अच्छी तरह है और पहले के समान ही जोर-जोर से भूकती रहती है। उसका एक काम पहले जैसा ही फटा हुआ है और उसकी पूंछ भी वैसी ही झाड़ों के कंटीले बीजों से चिपंटी हुई रहती है। मैंने उस कमरे में डेरा डाला है, जिसमें तुम आकर ठहरा करते थे। यद्यपि इस कमरे में सूर्य की किरणें पड़ती हैं और इसके अन्दर बहुत-सी मक्खियां भी हैं, तथापि दूसरे कमरों की बनिस्बत इसमें पुराने घर की-सी गन्ध कम है। यह एक अजीब बात है कि उस नमी से भरी हुई, बल्कि कड़वी और हल्की-सी गन्ध का मेरी कल्पना पर जबरदस्त असर पड़ता है। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि वह मुझे अप्रिय लगती है, बल्कि इसके विपरीत वह मुझे उदास बनाकर हतोत्साह कर देती है। तुम्हारे समान ही मैं पीतल के तख्तेवाले छोटे-मोटे सन्दूकों को, अण्डाकार पीठवाली और टेढ़ी टांगवाली सफेद आराम-कुर्सियों को, मक्खियों की गंदगी से भरे शीशे के झाड़-फानूस को, जिसके बीच नीले रंग के गोले हैं: तथा इसी प्रकार के दूसरे मौरूसी सामान को बहुत पसन्द करता हूं, परन्तु मैं इन सब चीजों को बराबर देखते रहना बर्दाश्त नहीं कर सकता। एक तरह की घबराहट पैदा करनेवाली उदासी मुझ पर छा जाती है।

जिस कमरे में मैं हूं, उसका सामान बहुत मामूली किस्म का देहात बना हुआ है, लेकिन कमरे के एक कोने में मैं लम्बी कतार वाली तंग अलमारी को छोड़ गया था, उसके तख्तों पर पुराने ढंग के हरे और नीले रंग के शीशे का बर्तन मैल से अटा दीख पड़ता

है। तुम्हें याद होगा कि मैंने काले चौखटों में जड़ा हुआ एक स्त्री का चित्र दीवार पर लटका दिया था—वही चित्र, जिसे तुम मनों लेस्को का चित्र कहा करते थे। इन नौ वर्षों में वह कुछ धुंधला हो गया है, लेकिन उसकी आंखों में अब भी वही गम्भीर, सलज्ज और कोमल दृष्टि बनी हुई है। उसके होंठों पर वही छिछोरी और विषादपूर्ण मुस्कुराहट है और उसकी क्षीण अंगुलियों से अब भी उसी तरह अधटूटा गुलाब का फूल धीरे-से गिरता हुआ दीखता है। मुझे अपने कमरे की झिलमिलियों पर लगे हुए पर्दों को देखकर बड़ी हँसी आती है। किसी समय ये हरे रंग के थे, किन्तु सूर्य की किरणों के पड़ते रहने से इस समय ये पीले रंग के हो गये हैं। उनपर दार्लेकुर कृत काले रंग में दृश्य अंकित किये हुए हैं। एक पर्दे पर एक साधु का चित्र है, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है, आंखें उभरी हुई हैं और पांव में खड़ाऊ हैं। वह एक युवती को, जिसके बाल बिखरे हुए हैं, हरण करके पहाड़ों की ओर लिये जा रहा है। दूसरे पर्दे पर चार योद्धाओं के बीच, जो चपटी टोपियां पहने हुए हैं, भयानक द्वन्द-युद्ध हो रहा है और उनमें एक आहत होकर पड़ा हुआ है। इसी प्रकार के बहुत-से भयानक चित्र इन पर्दों पर अंकित हैं और चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई है। इन पर्दों से होकर रोशनी छत पर पड़ती है। जबसे मैंने यहां डेरा डाला है, मुझे एक प्रकार की आन्तरिक शान्ति का अनुभव हो रहा है। यहां रहते हुए कोई भी काम करने की इच्छा नहीं होती, किसी व्यक्ति को देखने को मन नहीं चाहता, किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती, किसी विषय पर विचार करने में आलस्य मालूम होता है किन्तु इसके साथ ही ध्यान करने में जड़ता नहीं जान पड़ती। पिछली दो बातों में जो

फर्क है, उसे तुम भली-भांति जानते ही हो। बाल्यकाल की स्मृतियां एक के बाद एक मुझे याद आने लगीं। जहां कहीं मैं गया,जिधर निगाह दौड़ाई, सभी ओर से स्मृतियां हिलोरे लेने लगीं और उनकी बहुत छोटी-से-छोटी बात भी अचलरूप में स्पष्टतया दीख पड़ने लगी। इन स्मृतियों के बाद दूसरी स्मृतियां भी आईं, तब मैंने अतीतकाल से क्रमश: अपने मन को हटा लिया। उस समय मेरे हृदय में जो कुछ शेष रह गया था, वह एक प्रकार का तन्द्राआलसयुक्त भारीपन का भाव था। मेरी उस समय की दशा का खयाल तो करो, जब मैं रकीता के पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठा हुआ था। एकाएक मैं न जाने कैसे ज़ोर से रो पड़ा ! मैं कोई बच्चा तो हूं नहीं, मेरी उम्र काफी बड़ी है, फिर भी मैं इसी तरह रोता रहता, अगर उस समय उस रास्ते से एक किसान औरत न निकलती। वह औरत कुतूहल में आकर मेरी ओर घूरने लगी। फिर बिना मेरी ओर अपना चेहरा घुमाये कमर तक झुककर मुझे सलाम करके चलती बनी ! यह देखकर मुझे बड़ी शर्म आई। क्या ही अच्छा हो, यदि मेरे मन की बिलकुल वही हालत सितम्बर तक बनी रहे, क्योंकि मैं सितम्बर तक ही ठहरूंगा। हां, मैं रोऊंगा नहीं। मुझे इस बात का बहुत ही खेद होगा, यदि इस अवधि के अन्दर मेरा कोई पड़ोसी मुझसे मिलने का विचार करे किन्तु मुझे इस बात की भी विशेष चिन्ता नहीं है, क्योंकि मेरे पास में यहां कोई मेरा पड़ोसी भी नहीं है। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे मनोभाव को समझ जाओगे। तुम खुद अपने अनुभव से यह जानते हो कि एकान्तवास प्राय: कितना लाभप्रद हुआ करता है। चारों ओर चक्कर काटने के बाद अब मुझे इस एकान्तवास की बड़ी आवश्यकता है।

किन्तु मैं यहां बेकार बनकर नहीं रहूंगा। मैं अपने साथ कुछ पुस्तकें लाया हूं और यहां मेरे पास एक अच्छा-सा पुस्तकालय भी है। कल मैं पुस्तकों की कुछ अल्मारियों को खोलकर बड़ी देर तक फफूंद लगी किताबों की खोज-बीन करता रहा। उनमें मैंने बहुत-सी ऐसी अजीब चीजें पाईं, जिन्हें पहले मैंने नहीं देखा था। सन् १७७० के लगभग का 'कंदीद' का एक हस्तलिखित अनुवाद, इसी समय के समाचारपत्र और मासिक पत्रिकाएं, प्रसन्न गिरगिट यानी 'मिरबो' के ग्रन्थ तथा अन्य बहुत-सी चीजें मिलीं। मैंने बच्चे की किताबें देखीं, जिनमें मेरी, मेरे पिता की, मेरी दादी की, और ज़रा खयाल तो कीजिये, मेरी परदादी तक की किताबें मौजूद थीं। एक फटी-पुरानी पुस्तक में, जिसकी जिल्द रंगीन थी, फ्रेंच-भाषा का व्याकरण था, जिसपर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—'बिगड़ा हुआ किसान'। उसका साल भी दिया हुआ था—सन् १७४१ । भिन्न-भिन्न समयों में मैं विदेशों से जो पुस्तकें लाया था, उन्हें मैंने वहां पाया। इनमें गेतेकृत 'फाउस्त' भी था। तुम्हें शायद यह बात न मालूम होगी कि एकसमय था, जब 'फाउस्त' मुझे कंठस्थ था (सिर्फ उसका प्रथम भाग)। उसे पढ़ते हुए मैं कभी थकता न था; किन्तु अब वे दिन नहीं रहे, वे स्वप्न नहीं रहे और पिछले नौ साल में तो शायद ही कभी मुझे गेते की पुस्तक हाथ में लेने का मौका मिला हो। उस छोटी किताब को, जिसे मैं इतनी अच्छी तरह जानता था, फिर देखकर (हालांकि वह सन् १८२८ का एक साधारण संस्करण था) मेरे मन में जो भावावेश हुआ, वह अकथनीय है। मैं उसे साथ लेता आया, बिछौने पर लेट गया और पढ़ने लगा। उसके चमत्कारपूर्ण प्रथम दृश्य का मुझपर कितना प्रभाव पड़ा ! पृथ्वी की आत्मा का आगमन, उसके शब्दों से, जिसे

तुम याद करते होंगे "जीवन की तरंगों पर, सृष्टि के बवंडर में" मेरा मन गद्गद् हो गया।

मुझे पुरानी बातें याद आ गईं—बर्लिन और वहां का छात्र-जीवन, कुमारी कलारा श्तिह, और ज़ैदेलमन, जो मेंफ़िस्तोफेल की भूमिका अदा किया करता था और रद्जिविल-कृत संगीत भी . . . बड़ी देर के बाद नींद आई। मेरी युवावस्था मेरे सामने छाया की भांति उदय होकर दीखने लगी। आग की तरह—विष की तरह—वह मेरी नसों में दौड़ गई, मेरा हृदय उछलने लगा और कोशिश करने पर भी शान्त नहीं हुआ। ऐसा मालूम होने लगा, मानो मेरी हृत्तन्त्री को किसी ने जोर से झंकृत कर दिया हो, जिससे मेरी उत्कंठाओं की तरंगें उठने लगी हों।

देखो न, तुम्हारा यह मित्र चालीस वर्ष की अवस्था में, जब इस सुनसान छोटे-से घर में एकाकी जीवन बिता रहा है, किस प्रकार खयाली बातों में डूब जाता है ! यदि इस समय कोई झांककर मेरी दशा देख लेता तो कैसा होता ! होता क्या ? मुझे जरा भी लज्जा न आती। शरमाना भी युवावस्था की निशानी है। क्या तुम जानते हो कि मुझे अब होने लगा है कि मैं वृद्धावस्था को प्राप्त हो रहा हूं। यह मुझे किस प्रकार मालूम हो रहा है, मैं तुम्हें बताऊंगा। इन दिनों मैं अपनी सुखद भावनाओं से भरसक लाभ उठाने की और अपनी उदास भावनाओं को गौण समझने की कोशिश करता हूं, परन्तु अपनी युवावस्था में मैं इसके ठीक विपरीत करता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि मैं अपनी उदासीनता को अपनी निधि समझकर अपने साथ-साथ लिये फिरता था और अपनी

प्रसन्नता पर मुझे लज्जा मालूम होती थी, किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी मुझे ऐसा मालूम होता है कि यद्यपि मुझे अपने इस जीवन में बहुत अनुभव प्राप्त हुए हैं, फिर भी, मित्र गोरात्सिओ, संसार में अभी कोई ऐसी चीज़ है, जिसका अनुभव मुझे नहीं हुआ है और 'वह चीज' अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आह ! मैं क्या से क्या कह गया ! इस समय तुमसे विदा लेता हूं। पेतेर्बुर्ग में तुम क्या कर रहे हो ? इस प्रसंग में एक बात तुमसे यह कहना चाहता हूं कि मेरा देहाती रसोइया सर्वोलय तुम्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कहता है। वह भी काफी उम्र का है, परन्तु बहुत बूढ़ा नहीं हुआ है। उसका शरीर कुछ स्थूल हो गया है, और उसका बदन गठीला है। भांति-भांति के भोजन बनाने में वह पहले की तरह ही निपुण है-मुर्गी का शोरबा, जिसमें प्याज की गोलियां उबली हैं; छेने के साथ कचौरी और पिगुस, जो मैदानी इलाकों का प्रसिद्ध भोजन है और जिसे खाने से तुम्हारी जीभ सफेद रंग की होकर चौबीसों घंटे खड़ी रहती थी। लेकिन कबाब वह इस समय भी उसी बुरी तरह पकाता है, जैसे कि बराबर पकाया करता था। वह इतना सख्त होता है कि तुम चाहो तो उससे थाली को मज़े में ठोंक-पीट सकते हो ! वह कार्डन की तरह हो जाता है। अच्छा, अब मैं तुमसे विदा होता हूं।

तुम्हारा

प० ब०

दूसरी चिट्ठी

म...ओए ग्राम,
१२ जून १८५०

प्यारे दोस्त !

मुझे आज़ तुमसे एक महत्वपूर्ण बात कहनी है। ध्यान देकर सुनो। कल भोजन के पहले मुझे घूमने की इच्छा हुई, किन्तु बगीचे में नहीं। मैं शहर की तरफ सड़क पर टहलने लगा। बिना किसी उद्देश्य के योंही किसी लम्बी-सीधी सड़क पर तेजी से चलते रहना बड़ा सुखद प्रतीत होता है। उस समय ऐसा मालूम होता है, मानो तुम कुछ कर रहे हो, या कहीं जल्दी में जा रहे हो। मैंने आगे नज़र दौड़ाई तो एक गाड़ी को अपनी ओर आते देखा। मैं मन-ही-मन शंकित चित्त से आश्चर्य करने लगा कि कहीं मुझसे मिलने के लिए तो कोई नहीं आ रहा है। नहीं, ऐसा तो नहीं मालूम होता, क्योंकि उस गाड़ी में बड़ी-बड़ी मूंछवाले एक सज्जन बैठे हुए थे, जो मुझसे बिलकुल अपरिचित थे। अब मुझे सन्देह करने का कोई कारण नहीं रह गया, परन्तु जब वह सज्जन और मैं आमने-सामने आ पहुंचे तो एकाएक उन्होंने गाड़ीवान को घोड़ा रोकने के लिए कहा, नम्रतापूर्वक अपनी टोपी उठाई और उससे भी अधिक विनम्र भाव में मुझसे पूछा, "क्या आपका शुभ नाम ...है?"

मैं भी वहीं पर ठिठक गया और अदालत के सामने विचार के लिए लाए गए एक कैदी के सामान साहसपूर्वक बोला, "जी हां, मुझे लोग इसी नाम से पुकारते हैं।" यह कहते हुए मैं उस मूंछवाले भले आदमी की तरफ भेड़ की तरह टकटकी लगाकर देखने लगा

और मन-ही-मन सोचने लगा। मुझे लगा, मैंने उन्हें कहीं देखा है।

गाड़ी से उतरते ही वह सज्जन बोल उठे, "क्या आप मुझे पहचानते नहीं ?"

मैंने कहा, "माफ़ कीजिये, मैं नहीं पहचानता।"

"लेकिन मैं तो आपको फौरन ही पहचान गया।"

इसके बाद परस्पर परिचय-सूचक बातें होने लगीं। फिर मालूम हुआ कि उन सज्जन का नाम प्रिइमकोव था। क्या तुम्हें इनकी याद है ? ये वही महाशय हैं, जिन्हें हम विश्वविद्यालय में अपने एक साथी के रूप में जानते थे।

इस समय तुम्हारे मन में, प्रिय सेम्योन निकोलाएविच, यह प्रश्न उठता होगा कि यह समाचार किस प्रकार महत्वपूर्ण है ? जहांतक मझे स्मरण है, प्रिइमकोव एक सुस्त लड़का था, यद्यपि उसमें कोई बुराई नहीं थी और न वह मूर्ख ही था। अच्छा, दोस्त, तो अब हम दोनों में आगे जो बातचीत हुई, सो सुनो।

उन्होंने कहा, "जब मुझे यह पता लगा कि आप मेरे पड़ोस में आ गये हैं, तो मुझे बड़ी खुशी हुई। इस तरह की खुशी सिर्फ मुझे ही महसूस हुई हो, सो बात नहीं।"

"क्या मैं जान सकता हूं कि और कौन मुझ पर मेहरबान है?"

"मेरी स्त्री।"

"आपकी स्त्री !"

"हां, मेरी स्त्री। वह आपकी एक पुरानी परिचिता है।"

"आपकी स्त्री का नाम क्या है ?"

"विवाह से पहले इसका कुल का नाम येल्त्सोवा था।"

यह सुनते ही मैं चौंककर बोल उठा-"वेरा निकोलाएव्ना!"

यही वह महत्त्वपूर्ण समाचार है, जिसका मैंने अपने पत्र के शुरू में जिक्र किया है।

परन्तु शायद तुमको इसमें भी कोई विशेषता मालूम न हो, इसलिए मुझे अपने गुजरे जमाने के बारे में तुम्हें कुछ बताना पड़ेगा।

जिस समय हम दोनों ने सन् १८३...में विश्वविद्यालय छोड़ा, उस समय मेरी उम्र तेईस साल की थी। तुम नौकरी करने चले गये और मैंने--जैसाकि तुम जानते ही हो--बर्लिन जाने का निश्चय किया, परन्तु वहां अक्तूबर से पहले मेरे लिए कोई काम करने को नहीं था। इसलिए रूस के देहात में मैंने गरमी बिताने का इरादा किया, जिससे मुझे आखिरी बार निठल्ला रहकर छुट्टी मनाने का मौका मिले, और इसके बाद फिर मैं पूरे उत्साह के साथ काम पर जुट जाऊं। मेरा यह अन्तिम उद्देश्य कहांतक कार्यरूप में परिणत हो सका, इस सम्बन्ध में यहां विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। किन्तु गरमियां मैं कहां गुजारूं, यह सवाल मेरे मन में उठा। मैं अपने निज के स्थान पर जाना नहीं चाहता था। मेरे पिता का अभी हाल ही में देहान्त हुआ था। मेरा और कोई सगा-सम्बन्धी

भी नहीं था। एकाकी और सुनसान जीवन से मुझे डर लगता था, इसलिए मेरे एक दूर के काका ने जब मुझे अपने घर पर देहात में, जो त० प्रांत में था, आने के लिए आमंत्रित किया तो मुझे बड़ी खुशी महसूस हुई। वह एक साधु-स्वभाव, सरल-हृदय तथा सम्पन्न व्यक्ति थे। देहात के जमींदारों की तरह वह एक बड़े आलीशान मकान में रहा करते थे। मैं वहां रहने के लिए गया। मेरे काका का परिवार बड़ा था। उनके दो लड़के और पांच लड़कियां थीं। उनके अलावा उनके घर में बराबर लोगों का जमघट लगा रहता था। हमेशा मेहमान लोग पहुंचते ही रहते थे, फिर भी वहां मुझे तनिक भी आनन्द नहीं मालूम पड़ता था। तमाम दिन कोला-हलमय आमोद-प्रमोद में बीत जाता था, जिससे किसी व्यक्ति को अपने सम्बन्ध में विचार करने का मौका ही नहीं मिलता था। जो कुछ करते थे, सब मिलकर करते थे। हरेक आदमी एक-दूसरे को खुश करने की कोशिश करता था और आमोद-प्रमोद का कोई मार्ग ढूंढ़ निकालने की कोशिश में लगा रहता था। इस प्रकार दिन समाप्त होते-होते प्रत्येक व्यक्ति बेहद थक जाता था। हम लोग जिस तरह रहते थे, उसमें कुछ भद्दापन मालूम पड़ता था। मैं तो तंग आकर वहां से विदा होने की बाट जोहने लगा था और सिर्फ अपने काका के जन्म-दिन के समारोह की प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन उसी समारोह के दिन नाच के समय मैंने वेरा निकोलाएना येल्त्सोव्वा को देखा और मैं वहां ठहर गया।

उस समय वह सोलह साल की थी। वह अपनी मां कें साथ मेरे काका के घर से चार मील की दूरी पर एक छोटी जमींदारी

में रहा करती थी। उसका पिता, जैसाकि मुझे बताया गया था, एक विलक्षण पुरुष था। वह बहुत शीघ्र सेना में कर्नल के पद पर पहुंच गया था। उसकी और भी पद-वृद्धि हो गई होती, परन्तु वह युवावस्था में ही संयोगवश अपने एक मित्र की गोली से--जबकि वह शिकार के लिए बाहर गया हुआ था--मारा गया। उसकी मृत्यु के समय वेरा निकोलाएव्ना छोटी बच्ची थी। उसकी मां भी एक असाधारण स्त्री थी। वह कई भाषाएं बोल लेती थी और उसकी जानकारी भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। वह अपने पति से उम्र में सात-आठ वर्ष बड़ी थी। उसके साथ उसने प्रेम-विवाह किया था। उसका पति उसे उसके बाप के घर से चुपचाप अपने साथ ले भागा था। वह अपने पति की मौत के सदमे को पूरी तरह काबू में कभी भी नहीं कर पाई, और अपनी मृत्यु के समय तक उसने काले कपड़े के सिवा और कोई कपड़ा नहीं पहना। प्रिइमकोव से मैंने सुना कि अपनी लड़की के विवाह के कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

मुझे इस समय भी उसके चेहरे का स्पष्ट स्मरण हो रहा है। उसका चेहरा भावपूर्ण और विषण्ण मालूम पड़ता था। उसके घने बाल कुछ-कुछ सफेद होने लग गये थे। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी, कठोर और ज्योतिहीन थीं। उसकी नाक बिलकुल सीधी और सुघड़ थी। उसका बाप, जिसका कुल का नाम लदानोव था, अठारह वर्ष तक इटली में रहा था। वेरा निकोलाएव्ना की मां अलवानो ग्राम के एक मामूली किसान की लड़की थी, जो अपनी इस लड़की के पैदा होने के दूसरे ही दिन अपने दूलहे द्वारा, जो त्रास्तवेरे गांव में रहता था, मार डाली गई, जिसके यहां से लदानोव उसे

फुसलाकर ले भागा था।

उस समय इस फुसलाने की कहानी को लेकर बड़ी सनसनी फैली थी। रूस लौट आने पर लदानोव ने न तो कभी अपने घर को ही छोड़ा, न अपने अध्ययन को ही। उसने अपने-आपको रसायन-शास्त्र, शरीर-शास्त्र और जादूगरी की कलाओं में लीन कर दिया । मनुष्य-जीवन को दीर्घजीवी बनाने के उपायों को ढूंढ निकालने के लिए उसने प्रयत्न किया। उसका ख्याल था कि वह प्रेतों, मृतकों की आत्माओं से वार्तालाप कर सकता है। पड़ोस के लोग उसे जादूगर समझा करते थे। वह अपनी लड़की को बहुत प्यार करता था और प्रत्येक विषय की शिक्षा उसे खुद दिया करता था, किन्तु येल्त्सोव के साथ घर से निकलकर भाग जाने के अपराध को उसने कभी क्षमा नहीं किया। उन दोनों को उसने कभी अपने सामने आने नहीं दिया। उनके लिए शोकपूर्ण जीवन की भविष्यवाणी की और अन्त में एकाकी जीवन बिताते हुए उसने मृत्यु का आलिंगन किया। जब श्रीमती येल्त्सोवा विधवा हो गई तो वह अपना सारा समय अपनी लड़की को शिक्षा देने में ही बिताने लगी। इसके बाद वह अपने किसी भी मेहमान से शायद ही कभी मिली हो। जब मैं पहले-पहल वेरा निकोलाएव्ना से मिला, उस समय तक वह किसी शहर में--यहांतक कि अपने जिले के शहर में भी--नहीं रही थी।

वेरा निकोलाएव्ना सामान्य रूसी अमीर परिवारों की लड़कियों जैसी नहीं थी। उसपर कुछ विशेषता की छाप दिखाई देती थी। जिस समय मेरा उससे परिचय हुआ था, उस क्षण से ही मैं उसके

हाव-भाव और लक्षणों की असाधारण शान्ति देखकर चकित होने लग गया था। उसमें किसी प्रकार की घबराहट या विक्षोभ जैसा नहीं मालूम पड़ता था। वह प्रश्नों का सही उत्तर सीधे तरीके से, समझदारी के साथ, दिया करती थी और जो कुछ उससे कहा जाता था, ध्यानपूर्वक सुना करती थी उसके चेहरे से बच्चे जैसी मासूमियत और सच्चाई टपकती थी, किन्तु उसके साथ ही उसका चेहरा कुछ प्रेमहीन और निश्चल-सा जान पड़ता था। वह शायद ही कभी प्रफुल्लित मालूम पड़ती थी, और सो भी उस प्रकार की प्रफुल्लित तो वह कभी नहीं होती थी, जिस प्रकार साधारण श्रेणी की लड़कियां हुआ करती हैं। उसकी हरेक बात से उसके निष्कपट हृदय की शान्ति झलकती थी, जो चहल-पहल की अपेक्षा अधिक आनन्दप्रद जान पड़ती थी। वह लम्बे कद की नहीं थी और उसके शरीर का ढांचा बहुत ही सुडौल और छरहरा था। उसका चेहरा और अंग-प्रत्यंग सुघड़ और सुकुमार मालूम पड़ते थे। उसका ललाट सुन्दर और स्निग्ध था। उसके बाल सुनहरे और चमकीले थे। अपनी मां की तरह नाक नुकीली और होंठ भरे हुए थे। कुछ कालेपन को लिये हुए उसकी भूरी आंखें, उसकी ऊपर की ओर मुड़ी हुई कोमल रोयेंदार पलकों के अन्दर से साफ दीख पड़ती थीं। उसके हाथ छोटे-छोटे थे, लेकिन देखने में विशेष सुन्दर नहीं मालूम पड़ते थे। उसके जैसे हाथ प्रतिभाशाली मनुष्यों के कदापि नहीं होते। असल में बात भी तो यही थी कि वेरा निकोलाएव्ना में कोई विशेष प्रतिभा नहीं पाई जाती थी। उसका कंठ - स्वर ठीक एक सात बरस के बच्चे जैसा ध्वनित होता था। मेरे काका के जन्म-दिवस के अवसर पर जो नाच हुआ था, उस समय ही

मेरा उस लड़की की मां के साथ परिचय कराया गया और इसके चन्द दिनों के बाद ही मैं पहले - पहल उन लोगों के घर पर जाकर मिला।

उसकी मां, श्रीमती येल्त्सोवा, एक अजीब औरत थी। उसमें चरित्रबल, दृढ़ इच्छा-शक्ति और चित्त की एकाग्रता जैसे गुणों का समावेश था। उसका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। मैं उसे देखते ही फौरन उससे भय खाने लग गया और उसे आदर की दृष्टि से देखने लगा। उसका हरेक काम किसी उसूल को लेकर होता था। उसने अपनी कन्या को भी सिद्धान्त के आधार पर ही शिक्षा दी थी, यद्यपि उसकी स्वतन्त्रता में उसने कभी कोई हस्तक्षेप नहीं किया था। उसकी लड़की उसे प्यार करती थी और आंख मूंदकर उसपर विश्वास करती थी। उसकी मां (श्रीमती येल्त्सोवा) यदि उसे कभी कोई पुस्तक पढ़ने के लिए देती और सिर्फ इतना ही कहती कि "अमुक पृष्ठ मत पढ़ना", तो उस पृष्ठ की कौन कहे, वह उसके पहले के पृष्ठ को भी छोड़ जाती, और वर्जित पृष्ठ की तरफ तो कभी भूलकर भी न देखती। परन्तु श्रीमती येल्त्सोवा में भी कुछ सनक पाई जाती थी। उदाहरण के लिए उसे ऐसे प्रत्येक विषय से डर मालूम पड़ता था, जिसका मनुष्य की कल्पना-शक्ति पर प्रभाव पड़े। यही कारण था कि उसकी लड़की यद्यपि सत्रह वर्ष की हो गई थी तो भी उसने एक भी उपन्यास या कविता नहीं पढ़ी थी। भूगोल, इतिहास, यहां तक कि प्राकृतिक विज्ञान, में भी उसका ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा था कि मुझे उसके सामने लज्जित होना पड़ता था यद्यपि मैं विश्वविद्यालय का एक स्नातक था और

सो भी साधारण स्नातक नहीं, बल्कि जैसा कि तुम जानते हो, प्रथम श्रेणी का स्नातक। श्रीमती येल्त्सोवा के साथ में उसकी सनक के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क किया करता था, हालांकि उसे बातचीत में खींचना एक कठिन काम था। वह बहुधा मौन रहा करती थी और बातचीत में सिर्फ अपना सिर हिला देती थी।

आखिर एक दिन उसने मुझसे कहा, "आप मुझसे कहते हो कि कविता पढ़ना लाभदायक और साथ ही आनन्दप्रद भी है। मेरे विचार में प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के प्रारम्भ में ही दोनों में से एक चीज को चुन लेना चाहिए--या तो 'लाभदायक' को अथवा 'आनन्दप्रद' को--और उसपर अन्त तक कायम रहना चाहिए। किसी समय मैंने भी इन दोनों का अपने जीवन मैं समन्वय करने की कोशिश की थी, किन्तु ऐसा करना असम्भव है और इसका परिणाम यह होता है कि या तो जीवन नष्ट हो जाता है या बीभत्स बन जाता है।"

सचमुच वह स्त्री एक आश्चर्यजनक प्राणी थी। उसका स्वभाव सरल और गर्वयुक्त था, जिसमें उसकी धर्मान्धता और अन्ध-विश्वास का भी कुछ समावेश पाया जाता था। एक दिन उसने मुझसे कुछ कहा, "मैं जीवन से डरती हूं।" वास्तव में वह जीवन से भयभीत थी। जिन रहस्यपूर्ण शक्तियों के आधार पर जीवन निर्भर करता है और जो किसी-किसी मौके पर एकाएक प्रकट हो जाती हैं, उन शक्तियों से ही वह डरती थी। जो इन शक्तियों के चंगुल में फंस गया, बस उसकी शामत आई समझिये। श्रीमती येल्त्सोवा के लिए तो ये शक्तियां भयानक रूप में प्रकट हुई थीं।

उसकी माता, पति और पिता की मृत्यु की कल्पना तो करो। इस प्रकार की आपदाएं किसी भी व्यक्ति को अत्यन्त त्रस्त बनाने के लिए काफी थीं। मैंने कभी उसे मुस्कराते नहीं देखा। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो उसने अपने को किसी ताले में बन्द करके उसकी ताली पानी में फेंक दी हो। उसे अपने जीवन में बहुत शोक सहना पड़ा था और इस शोक में उसका हाथ बंटानेवाला कोई भी नहीं था, इसलिए वह इस शोक को बराबर अपने हृदय के अन्दर ही छिपाये रहती थी। अपने भावों को प्रकट न होने की कला में उसने अपने को इतना निपुण बना लिया था कि उसे अपनी कन्या के प्रति अपना उत्कट अनुराग व्यक्त करने में भी संकोच मालूम पड़ता था। मेरे सामने उसने एक बार भी अपनी कन्या का चुम्बन नहीं किया और न ही उसे कोई प्यार का नाम लेकर ही पुकारा। वह बराबर अपनी लड़की को 'वेरा' के नाम से पुकारा करती थी। मुझे उसका एक कथन याद है। मैंने एक बार उससे कहा था, "मौजूदा जमाने के हम सभी लोगों की जिन्दगी का कोई आधा हिस्सा ठोकरें खाकर टूटा हुआ होता है।" इसपर वह बोल उठी, "जिन्दगी का आधा हिस्सा टूटा होना अच्छा नहीं, या तो वह बिलकुल ही चकनाचूर हो जाय, या जिस ढंग से जिन्दगी चले, चलने दे।"

श्रीमती येल्त्सोवा से बहुत कम आदमी मिलने आया करते थे, किन्तु मैं अकसर उससे मिलने जाता था। मैं मन-ही-मन अनुभव करता था कि उसकी मुझपर कृपा-दृष्टि है और मैं भी सचमुच वेरा निकोलाएव्ना को बहुत चाहता था। हम दोनों साथ-साथ बातें करते और साथ-साथ ही घूमा करते थे। उसकी मां हमारे रास्ते

में बाधक नहीं होती थी। वेरा निकोलाएव्ना अपनी मां से अलग होना नहीं चाहती थी। मैं भी उसके साथ एकान्त में बातें करने के लिए उत्कण्ठित नहीं रहता था। वेरा निकोलाएव्ना में मन में सोचते हुए मुंह से बड़बड़ाने की एक अजीब आदत थी। वह रात को सोते में अपने दिन के उन विचारों को लेकर, जो उसके दिल पर जम जाते थे, बड़बड़ाया करती थी। एक दिन मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखती हुई और अपनी सदा की आदत के अनुसार धीरे-से, अपने हाथ के सहारे झुकी हुई, वह मुझसे बोली, "मुझे ऐसा लगता है कि श्री ब० एक भला आदमी है, किन्तु उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता।" हम दोनों के बीच अत्यन्त मैत्री एवं शान्तिपूर्ण सम्बन्ध था। सिर्फ एक बार मुझे ऐसा ख्याल हुआ कि मैंने उसकी चमकती आंखों की गहराई में कुछ ऐसा अनोखा भाव प्राया, जो एक प्रकार का करुणामिश्रित कोमल भाव था। किन्तु शायद यह मेरी भूल थी।

इधर समय बीतता जा रहा था और अब वह वक्त आ गया था, जब मैं अपने जाने की तैयारी करता, परन्तु अपना जाना टाल रहा था। कभी-कभी जब मैं यह सोचता था और इस बात का अनुभव करता था कि शीघ्र ही मुझे इस सुन्दर युवती से, जिसे मैं इतना चाहने लग गया था, अलग होना पड़ेगा तो मेरा मन खिन्न हो उठता था। बर्लिन में मेरे लिए अब कोई आकर्षण नहीं रह गया था। मुझमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि दिल में जो भावना उठ रही थी, उसे स्वीकार कर लूं। सचमुच यह बात मेरी समझ में नहीं आती थी कि मेरे अन्दर क्या बीत रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था, मानो मेरी अन्तरात्मा

के ऊपर कोहरा छा गया है। आखिर एक दिन प्रात: काल अचानक मुझे सारी बातें स्पष्ट जान पड़ने लगीं। "अब अधिक भटकने की क्या जरूरत है ? वहां ऐसा रखा ही क्या है, जिसके लिए मैं कोशिश करता रहूं, क्योंकि किसी भी हालत में मैं सत्य तक तो पहुंच ही नहीं सकूंगा। क्या इससे यह अच्छा नहीं है कि मैं यहां ठहर जाऊं और विवाह कर लूं ?"ज़रा खयाल तो करो कि उन दिनों विवाह की भावना मेरे लिए भयप्रद नहीं थी ! उसके विपरीत मैं इस कल्पना से प्रसन्न हो उठता था ! इतना ही नहीं, बल्कि उस दिन मैंने अपनी अभिलाषाएं न केवल वेरा निकोलाएव्ना पर ही प्रकट कीं, जैसा कि स्वभावत: लोग अनुमान करेंगे, बल्कि उसकी मां श्रीमती येल्त्सोवा से भी कह दीं। यह सुनकर वह वृद्धा स्त्री मेरी ओर देखने लगी।

उसने कहा, "नहीं जी, पहले बर्लिन जाकर अपने को खूब उलट-फेरकर संयमित कर लीजिये। आप भले आदमी तो हैं, परन्तु वेरा के लिए आपके जैसा पति नहीं, दूसरे प्रकार का पति चाहिए।" मैंने लज्जा से सिर झुका लिया। इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात जो तुम्हें लगेगी, वह यह थी कि मेरा मन श्रीमती येल्त्सोवा के कथन पर राजी हो रहा था। एक सप्ताह के बाद मैं चला गया और तबसे न तो श्रीमती येल्त्सोवा को और न वेरा निकोलाएव्ना को देखा। मैंने संक्षेप में सीधे-सादे ढंग पर इस प्रसंग का वर्णन किया है, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम किसी ऐसी बात को पसंद नहीं करते, जो घुमा-फिराकर कही गई हो। बर्लिन पहुंचकर मैं बहुत जल्दी वेरा निकोलाएव्ना को भूल गया।

इतना मैं जरूर मानूंगा कि आज एकाएक उसके बारे में

सुनकर मैं उद्वेलित हुए बिना नहीं रहा। मेरे दिल पर यह खयाल जम गया है कि वेरा निकोलाएव्ना मेरे इतने पास में रहती है, वह मेरी पड़ोसिन है और दो-एक दिन के अन्दर ही मैं उसे देखूंगा। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो मेरी आंखों के सामने अतीत काल पृथ्वी के गर्भ से एकाएक प्रकट हुआ हो और मेरे दिल के ऊपर आकर बैठ गया हो। प्रिइमकोव ने मुझे सूचित किया--"मैं इसी उद्देश्य से मिलने आ रहा हूं, जिससे हम दोनों का पुराना परिचय फिर नया हो जाय और इसके लिए मैं अपने घर पर आपके यथासम्भव शीघ्र ही आने की बाट जोहता रहूंगा।" उसने अपने विषय में मुझे बतलाया कि वह पहले घुड़सवार फौज में काम करता था और फिर लेफ्टिनेन्ट के पद से उसने अवकाश ग्रहण किया था। मेरे रहने के स्थान से लगभग छः मील की दूरी पर उसने एक जमींदारी खरीद ली थी और उसका यह इरादा था कि उसके प्रबन्ध में ही वह अपने समय को व्यतीत करे। उसने यह भी बतलाया कि उसके तीन बच्चे हुए थे, जिनमें दो तो मर चुके हैं, सिर्फ एक पांच वर्ष की लड़की बची है।

मैंने पूछा, "क्या आपकी पत्नी को मेरी याद है ?"

"हां, उसे आपकी याद है।"उसने थोड़ी हिचकिचाहट के साथ उत्तर दिया, "इसमें सन्देह नहीं कि उन दिनों वह निरी बालिका थी, किन्तु उसकी मां आपकी बराबर तारीफ किया करती थी, और आप जानते ही हैं कि उसके लिए उसकी मां का एक-एक शब्द कितना मूल्यवान् है।"

मुझे श्रीमती येल्त्सोवा के वे शब्द याद आ गये कि मैं उसकी

वेरा के उपयुक्त पात्र नहीं हूं। मैंने प्रिइमकोव की ओर तिरछी निगाह से देखते हुए मन-ही-मन कहा, "मैं अनुमान करता हूं कि तुम उसके उपयुक्त पात्र थे।" उसने कई घण्टे मेरे साथ बिताये। वह बहुत ही अच्छा आदमी है। नम्रता के साथ बातें करता है। मेरी ओर बड़ी भलमनसाहत के साथ देखा करता है। कोई भी आदमी उसे चाहे बिना नहीं रह सकता, परन्तु उस समय से, जब हम दोनों ने उसे विद्यालय में देखा था, उसकी बौद्धिक शक्तिओं का अधिक विकास नहीं हुआ है। सम्भवत: कल मैं उससे जाकर अवश्य मिलूंगा। मुझे यह जानने का बड़ा कुतूहल है कि वेरा निकोलाएव्ना इस समय कैसी हो गई है। तुम, शैतान, अपनी मैनेजरी की मेज के सामने बैठकर मेरे इस पत्र को पढ़ने पर हँस पड़ोगे, परन्तु फिर भी मैं तुम्हें लिखकर बतलाऊंगा कि उस स्त्री का मुझपर कैसा असर पड़ा है। अच्छा, अब विदा लेता हूं। मेरी अगली चिट्ठी की राह देखना।

तुम्हारा

प० ब०

तीसरी चिट्ठी

म...ओए ग्राम,
१६ जून १८५०

प्यारे दोस्त,

मैं वेरा निकोलाएव्ना के घर गया था। मैंने उसे देखा। तुम विश्वास करो या न करो, पर सबसे पहले तो मुझे तुमसे एक आश्चर्यजनक बात यह कहनी है कि उसके चेहरे में या स्वरूप में शायद ही कोई परिवर्तन हुआ हो। जिस समय वह मुझसे मिलने आई, मैं ताज्जुब में आकर चिल्ला-सा उठा, "अरे, यह तो सत्रह साल की छोटी लड़की जैसी मालूम पड़ती है।" सिर्फ उसकी आंखें छोटी बालिका जैसी नहीं लगती थीं। उसकी आंखें तो लड़कपन में भी कभी बालिका जैसी नहीं दीखती थीं। उस समय भी उसकी आंखें बिलकुल स्वच्छ थीं।

किन्तु अब भी उसमें वही धीरता, वही गम्भीरता, वही कण्ठ-स्वर--सबकुछ वैसे ही मौजूद हैं। उसके ललाट पर ज़रा भी शिकन नहीं थी, मानो इतने दिनों तक वह बर्फ से ढककर रखी गई हो। उसपर भी उसकी उम्र इस समय अट्ठाइस साल की है और उसके तीन बच्चे हो चुके हैं। यह बात तो समझ से भी बाहर है। ऐसा मत खयाल करो कि चूंकि मैं उसे पहले से ही चाहता था, इसलिए मैं बढ़ा-चढ़ाकर उसकी तारीफ कर रहा हूं। नहीं, यह बात नहीं है, बल्कि इसके विपरीत मैं उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन का जो अभाव पाता हूं, वह मुझे पसन्द नहीं।

अट्ठाईस वर्ष की स्त्री को, जो पत्नी और माता के पद को

प्राप्त कर चुकी है, एक छोटी लड़की के सदृश नहीं होना चाहिए। उसे जीवन से कुछ शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उसने मेरा हार्दिक स्वागत किया, किन्तु प्रिइमकोव तो मेरे आगमन की खुशी में आपे से बाहर हो रहा था। मालूम पड़ता था, मानो वह किसी ऐसे आदमी की तलाश में हो, जो इस अवसर पर उसके साथ खूब आनन्द मनाये।

उसका घर बहुत आरामदेह और साफ-सुथरा है। वेरा की पोशाक भी एक बालिका जैसी ही थी, बिलकुल सफेद रंग की, जिसमें नीले रंग की पट्टी लगी हुई थी और गले में एक पतली सोने की चेन लटक रही थी। उसकी लड़की भी बड़ी सुन्दर है, पर वह अपनी मां जैसी बिलकुल नहीं है। उसे देखने से उसकी दादी की याद आ जाती है। मुलाकाती कमरे में एक सोफा के ठीक ऊपर एक अजीब औरत की तसवीर टंगी हुई है, जो इस लड़की की शकल-सूरत से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। उस कमरे में प्रवेश करते ही मेरी नज़र उस तसवीर पर जा पड़ी। ऐसा लगा, जैसे वह मेरी ओर उत्कण्ठापूर्वक और कठोर निगाहों से टकटकी लगाये हुए देख रही हो। फिर हम लोग वहीं बैठ गये। गुज़रे जमाने की बातें होने लगीं और धीरे-धीरे हम बातचीत में खो-से गये। मैं बराबर श्रीमती येल्त्सोवा की धुंधली तसवीर की ओर देख रहा था। वेरा निकोलाएव्ना उस तसवीर के ठीक नीचे बैठी हुई थी। यह स्थान उसे बहुत ही प्रिय है।

एक बात से मुझे बड़ा अचरज हुआ। भला, सोचो तो सही, अबतक वेरा निकोलाएव्ना ने एक भी उपन्यास या कविता किसी

भी प्रकार की कोई कल्पित रचना--जैसाकि वह इन विषयों को कहा करती है--नहीं पढ़ी है !

मानव-बुद्धि के सर्वोच्च आनन्द के प्रति इस प्रकार की समझ में न आनेवाली उदासीनता देखकर मैं खिन्न हो गया। एक समझदार और जहांतक मैं विचार कर सकता हूं, भले-बुरे की पहचान करनेवाली--स्त्री के लिए इस प्रकार का भाव सर्वथा अक्षम्य है।

"क्या आपने यह उसूल बना लिया है कि इस तरह की पुस्तकें कभी भी नहीं पढ़ूंगी ?" मैंने पूछा।

"मुझे कभी पढ़ने का संयोग ही नहीं हुआ," उसने उत्तर दिया, "या यों कहिये कि मुझे कभी समय ही नहीं मिला।"

"समय ही नहीं मिला।" आपकी यह बात सुनकर तो मुझे अचरज होता है। फिर भी मैं प्रिइमकोव को सम्बोधन करते हुए कहने लगा, "मैं समझता था कि आपने तो अपनी स्त्री में कविता पढ़ने की रुचि जरूर पैदा कर दी होगी।"

"अगर मैं ऐसा कर सकता तो मुझे बड़ी खुशी होती।" इस प्रकार प्रिइमकोव ने कहना शुरू ही किया था कि बीच में बात काटकर वेरा निकोलाएव्ना बोल उठी--"बहाना मत करो। तुम्हें तो खुद कविता से कोई खास मोहब्बत नहीं।"

वह कहने लगा,"मुझे कविता से तो खास मोहब्बत नहीं है, पर उपन्यास..."

"परन्तु आप करते क्या हो ? शाम का समय आप किस प्रकार बिताते हो ?" मैं पूछ बैठा, "आप ताश खेला करते हैं ?"

"हां, कभी-कभी ताश खेला करते हैं।" वेरा ने उत्तर दिया, "परन्तु इसके सिवा और भी बहुत-कुछ हमें करना पड़ता है। हम पढ़ते भी हैं। कविता के अलावा और विषयों की अच्छी पुस्तकें भी पढ़ने के लिए हैं।"

"आप कविता के इतने खिलाफ क्यों हैं ?"

"मैं इसके खिलाफ नहीं हूं। बात यह है कि बचपन से ही इस तरह की कल्पित रचनाओं के पढ़ने की मैं आदी नहीं हूं। मेरी मां की ऐसी ही इच्छा थी और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, मेरी यह धारणा मजबूत होती जाती है कि जो कुछ मेरी मां ने किया और जो कुछ उसने कहा, सब ठीक था--वेद वाक्य जैसा पवित्र था।" "अच्छा, जैसी आपकी इच्छा, परन्तु मैं आपसे इस विषय में सहमत नहीं हो सकता। मुझे निश्चय है कि आप एक बहुत शुद्ध और उचित आनन्द से व्यर्थ ही अपने को वंचित कर रही हैं। मैं समझता हूं कि आप संगीत और चित्रकारी के खिलाफ नहीं हैं, तो फिर कविता के खिलाफ क्यों हों ?"

"मैं इसके खिलाफ नहीं हूं। मैंने इसके बारे में कभी कुछ जाना ही नहीं, बस, इतना ही मुझे कहना है।"

"खैर, यह काम मेरे जिम्मे रहा। मेरा अनुमान है कि आपकी मां ने कल्पना तथा कविता-विषयक कला के ज्ञान से आपको आजीवन वंचित रखने की इच्छा कभी न की होगी।"

"नहीं, जब मेरा विवाह हो गया तो मेरी मां ने मेरे ऊपर किसी तरह की रुकावट नहीं रहने दी; किन्तु जिसे आप उपन्यास

कहते हैं, उस विषय को पढ़ने का मेरे दिल में कभी खयाल ही पैदा नहीं हुआ।"

मैंने विस्मय में आकर वेरा निकोलाएव्‌ना के इस कथन को सुना। मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

वह गम्भीर चितवन से मेरी ओर देख रही थी। चिड़िया जब भयभीत नहीं होती है, तब इसी प्रकार देखा करती है।

"अच्छा, मैं आपको एक पुस्तक दूंगा।" मैंने कहा। उस समय मुझे 'फाउस्त' पुस्तक का ख्याल आया, जिसे हाल ही में मैंने फिर से पढ़ना शुरू किया था।

वेरा निकोलाएव्‌ना ने एक हल्की-सी सांस ली।

उसने कुछ डरे हुए स्वर में पूछा, वह पुस्तक जार्जेस सन्द की तो नहीं है ?"

"ओह ! तब तो आपने उसके विषय में सुना है। अच्छा, मान लो कि वही हो, तो इसमें हर्ज ही क्या है ?... पर नहीं, मैं आपको एक दूसरे लेखक की पुस्तक दूंगा। आप जर्मन-भाषा भूली तो नहीं हैं ?"

"नहीं।"

"यह तो एक जर्मन की तरह ही जर्मन-भाषा बोल लेती हैं।" प्रिइमकोव ने कहा।

"हां, बहुत अच्छा है। मैं आपको वह पुस्तक लाकर दूंगा, और तब आप देखिये कि कैसी आश्चर्यजनक वस्तु मैं लाया हूं।"

"बहुत अच्छा, देखा जायगा, किन्तु अब हम बगीचे में चलें, नहीं तो नताशा चुप नहीं रह सकेगी।"

उसने बालकों की एक टोपी जैसी गोल पुलाव को टोपी अपने सिर पर रख ली। वह टोपी ठीक वैसी थी, जैसीकि उसकी लड़की पहने हुई थी, सिर्फ आकार में कुछ बड़ी थी। फिर हम लोग बगीचे में गये। मैं उसके ज़रा पीछे चल रहा था। ताजी हवा मैं लीपा के घने वृक्ष की छाया में मुझे उसका चेहरा इतना मनोहर मालूम पड़ता था, जैसाकि इससे पहले मैंने कभी नहीं देखा था। विशेषकर जब वह कुछ मुड़कर पीछे की ओर सिर करके अपनी टोपी के अग्ले भाग के अन्दर से मुझे देखने लगती थी, तब तो मुझे उसका चेहरा और भी लुभावना प्रतीत होता था।

यदि हम दोनों के पीछे प्रिइमकोव नहीं चलता होता और वह छोटी लड़की हमारे सामने उछलती होती तो मैं निश्चय ही अपने को पैंतीस वर्ष की अवस्था के बदले तेईस वर्ष का नौजवान खयाल करता। इसके साथ ही मुझे इस बात का भी ध्यान आता कि मैं बर्लिन के लिए रवाना होनेवाला ही हूं। विशेषकर वह बगीचा, जिसमें हम लोग घूम रहे थे, श्रीमती येल्त्सोवा की जमींदारी के बगीचे से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। मैं वेरा निकोलाएव्ना से अपने भावों को प्रकट किये बिना नहीं रह सका।

उसने उत्तर दिया, "हरेक आदमी मुझसे यही कहता है कि बाहर से मुझमें बहुत कम तब्दीली हुई है, हालांकि भीतर से भी मैं सचमुच वैसी ही बनी हुई हूं, जैसी कि मैं पहली थी !"

फिर हम लोग एक छोटे-से चीनी ढंग के बने हुए ग्रीष्मगृह

के नजदीक आये।

वेरा ने कहा, "ओसिनोव्का में इस प्रकार का घर हम लोगों के पास नहीं था। हालांकि यह इस तरह नीचे की ओर झुका हुआ और बदरंग मालूम पड़ता है, पर इस बात का खयाल आप न कीजिये। भीतर से बहुत अच्छा है और इसमें बहुत ठंडक है।"

हम लोग उस घर के भीतर गये। मैंने चारों तरफ देखकर कहा, "वेरा निकोलाएव्ना, मेरी आपसे एक प्रार्थना है। जब मैं अगली बार आऊं तो यहांपर एक मेज और कुछ कुर्सियां लगवा दीजिये। यहां तो सचमुच बड़ा आनन्द मालूम पड़ता है। मैं आपको यहां जर्मन कवि गेते का 'फाउस्त' पढ़कर सुनाऊंगा। यह वही पुस्तक है, जिसे पढ़कर मैं आपको सुनाना चाहता हूं।"

"हाँ, यहां मक्खियां भी नहीं हैं।" उसने सिर्फ इतना ही कहा, "आप फिर आयेंगे कब ?"

"परसों।"

"बहुत अच्छा।"

"मैं इसके लिए इन्तजाम कर दूगीं।"

नताशा भी हम लोगों के साथ इस ग्रीष्म-गृह में आई थी। वह एकाएक चीख उठी और बिलकुल भयभीत-सी होकर पीछे की ओर उछल पड़ी।

"क्यों, हुआ क्या ?" वेरा निकोलाएव्ना ने पूछा।

उस घर के कोने की ओर इशारा करते हुए उस छोटी लड़की

ने कहा, "ओ मां, देख तो वह मकड़ी कितनी भयानक है ! " वेरा निकोलाएव्ना ने उस मकान के कोने की ओर देखा, एक मोटी-सी मकड़ी दीवार पर धीरे-धीरे रेंग रही थी।

मां ने कहा, उसे देखकर डरती क्यों है ? वह काटेगी नहीं।

इतना कहकर मेरे मना करने के पहले ही उसने उस भयंकर जन्तु को अपने हाथ से उठा लिया और उसे हाथ पर चलने दिया। इसके बाद फिर उसे घर से बाहर फेंक दिया।

"सचमुच, आप बहादुर हैं।" मैंने जोर से कहा।

"इसमें बहादुरी क्या है ? यह कोई ज़हरीली मकड़ी तो थी नहीं।"

"आप तो भौतिक विज्ञान में पहले जैसी ही निपुण मालूम होती हैं, किन्तु मैं तो इसे हाथ पर नहीं रख सकता था।"

"इसमें डरने की कोई बात नहीं।" उसने फिर दोहराया।

नताशा हम दोनों की तरफ चुपचाप देखकर हँस पड़ी।

"आपकी मां से यह कितनी मिलती-जुलती है ?" मैंने कहा।

"हां," वेरा ने आनन्द से मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "मेरे लिए यह बड़े ही आनन्द की बात है। प्रभु करे, यह सब बातों में अपनी नानी के जैसी हो, सिर्फ चेहरे में ही नहीं।"

इसके बाद हम लोगों को भोजन के लिए बुलावा मिला। भोजन कर चुकने के बाद मैं चला आया।

भोजन बहुत अच्छा था और वह भलीभांति बनाया गया था।

यह बात यहां तुम्हारे जैसे भोजनभट्ट के लिए लिखना जरूरी है। कल मैं उन लोगों के पास 'फाउस्त' लेकर पहुंचूंगा। मुझे डर है कि शायद बूढ़े गेते को और मुझे वहां पूर्ण सफलता न मिल सकेगी। मैं तुम्हें इस विषय में ठीक-ठीक फिर लिखूंगा।

अच्छा, इन सब गतिविधियों के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है? यही न कि उस स्त्री का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा है, मैं उसके प्रेम में फंसने जा रहा हूं, इत्यादि-इत्यादि ?

प्यारे भाई, यह सब फिजूल की बात है। हरेक चीज की कोई हद होती है। मैं काफी मूर्ख बन चुका हूं, अब अधिक बनने की ज़रूरत नहीं है। मेरी जैसी उम्र में अब कोई नये सिरे से जीवन आरम्भ नहीं कर सकता। इसके सिवा मैंने इस प्रकार की स्त्रियों की कभी परवा नहीं की। सच कहूं, मुझे ऐसी स्त्रियां पसन्द थीं--

मैं झिझकता हूं, मन को दर्द है ।
क्योंकि अपने बुतों[1] से शर्म आती है ।।

हां, एक बात मैं हर हालत में मानने के लिए तैयार हूं, यानि इस प्रकार के पड़ोसी को पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। मुझे इस बात की खुशी है कि मुझे एक बुद्धिमान, सरल और तेजस्वी व्यक्ति को देखने का मौका मिलता। इनके बाद क्या होगा, इस सम्बन्ध में तुम फिर मुझसे सुनोगे।

तुम्हारा
प० ब०

---

१. प्रेमिका के अर्थ में

चौथी चिट्ठी

म...ओए ग्राम,
२० जून, १८५०

प्रिय मित्र,

पुस्तक का पढ़ना कल हुआ था। किस तरह से हुआ, सो भी सुन लो। पहले तो तुम्हें मैं यह जतला देना चाहता हूं कि जितनी आशा नहीं थी, उससे अधिक सफलता प्राप्त हुई, यहां-तक कि उस सफलता को व्यक्त करने के लिए 'सफलता' शब्द उपयुक्त नहीं जंचता।

हां, तो सुनो। मैं भोजन के समय वहां पहुंचा। हम लोग कुल छः आदमी भोजन के लिए बैठे--वेरा निकोलाएव्ना, प्रिइमकोव, उसकी छोटी कन्या, कन्या की अध्यापिका, मैं और एक बूढ़ा जर्मन, जो भूरे रंग का फ्राक--कोट पहने हुए था। उस जर्मन की दाढ़ी-मूंछें बिलकुल सफाचट थीं और चेहरा बहुत ही सच्चा और सुशील मालूम पड़ता था। वह पोपले मुंह से मुस्कराता था। उसके पास से कॉफी की-सी विलक्षण गन्ध आती थी, जैसी कि सभी बुड्ढे जर्मनों के शरीर से आती है। मेरा उस बूढ़े जर्मन से परिचय कराया गया। उसका नाम शिम्मेल था। वह शिक्षक का काम करता था और प्रिइमकोव के पड़ोसी कन्याज़ ख०[1] के यहां रहा करता था। लगता है, वेरा निकोलाएव्ना का उसपर स्नेह था, इसलिए उसने उसे पुस्तक के पढ़े जाने के समय उपस्थित रहने के लिए आमन्त्रित किया था। हम लोग देर तक भोजन करते रहे। फिर बहुत देर

१. क्रांति सें पहले रुस की एक उपाधि

तक मेज के पास बैठे रहे और बाद में घूमने चले गये। मौसम बड़ा सुहावना था। सुबह वर्षा हुई थी और हवा ज़ोरों से सनसनाहट के साथ चली थी, किन्तु संध्या होते-होते फिर एकदम शान्ति छा गई थी। हम लोग बाहर खुले मैदान में आये। मैदान के ऊपर गुलाबी रंग का बादल ऊंचे आकाश में छाया हुआ था और उस पर भूरे रंग की लकीरें धुएं जैसी फैली हुई थीं। उस बादल के किन्नारे से एक छोटा-सा टिमटिमाता हुआ तारा कभी दीखता था और कभी आंखों से ओझल हो जाता था। इससे कुछ दूर पर नीले रंग के आकाश में, जिसमें कुछ हलकी-सी लाली मिली हुई थी, दूज का चांद मंद-मंद चमक रहा था। मैंने वेरा निकोलाएव्ना का ध्यान इस मेघ-खण्ड की ओर आकर्षित किया।

वह बोली, "सचमुच बड़ा सुन्दर बादल है, किन्तु ज़रा उस ओर तो देखो।"

मैंने घूमकर देखा। एक विस्तृत घनघोर काले रंग का तूफानी बादल डूबते हुए सूर्य को छिपाता हुआ ऊपर आकाश में फैल रहा था।

बादल का वह टुकड़ा ज्वालामुखी पर्वत जैसा ऊपर की ओर उठ रहा था और ऐसा मालूम पड़ता था, मानो कोई भारी गठरी ऊपर आकाश की ओर फैलाकर फेंक दी गई हो। उस बादल के चारों ओर बैंगनी रंग की चमकीली कोर-सी लगी हुई थी और उसके एक स्थान पर, ठीक बीच में, उस विशाल मेघ-मंडल से बाहर निकलकर वह कोर इस प्रकार चमक रही थी, जैसी कि जलते हुए ज्वालामुखी के मुंह में आग दीखती है।

प्रिझमकोव ने कहा, "आंधी आयगी।"

परन्तु असली विषय को छोड़कर मैं किधर भटका जा रहा हूं। मैं अपने पिछले पत्र में एक यह बात कहना भूल गया था कि जब मैं प्रिझमकोव के यहां से अपने घर वापस लौटा, तो मुझे इस बात का खेद हुआ कि मैंने 'फाउस्त' का जिक्र क्यों किया। अगर जर्मनभाषा का ही कोई ग्रन्थ पड़ना था। तो शुरू में शिलर के किसी ग्रन्थ का पढ़ा जाना ही अच्छा होता। मुझे विशेषकर 'फाउस्त' के प्रथम दृश्य के सम्बध में, जो ग्रेथेन के आने से पहले है, आशंका हो रही थी। मैं मेफ़िस्तोफ़ेल के विषय में भी निश्चिन्त नहीं था, किन्तु मुझपर तो 'फाउस्त' का जादू छाया हुआ था और दूसरा ऐसा कोई विषय नहीं था, जिसे मैं इतनी दिलचस्पी के साथ पढ़ सकता। जब हम लोगों ने उस ग्रीष्म-भवन के भीतर प्रवेश किया, अंधेरी रात घिरती आ रही थी। एक दिन पहले से ही वह कमरा हम लोगों के लिए तैयार कराया गया था। दरवाजे के ठीक दूसरी ओर एक छोटे कोच के सामने एक गोल मेज रखी थी, जिसपर कपड़ा बिछा हुआ था। उसके चारों तरफ आराम-कुर्सियां आदि रखी हुई थीं और उस मेज के ऊपर एक लैम्प जल रहा था। मैं उस कोच पर बैठ गया और पुस्तक निकाली। वेरा निकोलाएव्ना भी दरवाजे के पास कुछ दूरी पर एक आराम-कुर्सी पर जमकर बैठ गई। अंधेरे में दरवाजे से होकर बबूल की हरी शाखा उस लैम्प के प्रकाश में धीरे-से हिलती हुई दीख पड़ रही थी। समय-समय पर शीतल मन्द सुगन्ध पवन का झोंका उस कमरे में आ जाया करता था। प्रिझमकोव मेरे पास मेज पर बैठ गया और वह जर्मन उसकी बगल

में। अध्यापिका नताशा के साथ उस घर में ही रह गई थी। भूमिका के तौर पर मैंने दो-चार बातें कहीं। मैंने डाक्टर फाउस्त की पुरानी कहानी से शुरू किया। मेफ़िस्तोफेल का आशय समझाया। महाकवि गेते का भी कुछ परिचय दिया और साथ ही यह भी उन लोगों से कह दिया कि जहां कोई स्थल उन्हें अस्पष्ट मालूम पड़े, वहीं मुझे रोक दें। इसके बाद मैंने अपना गला साफ किया। प्रिइमकोव ने मुझसे पूछा, "कहिये तो आपके लिए कुछ शर्बत मंगाऊं ?"

ऐसा मालूम पड़ता था, मानो इस प्रश्न से उसके मन को बहुत-कुछ सन्तोष हुआ हो।

मैंने कहा, "धन्यवाद, इसकी जरूरत नहीं।"

इसके बाद बिलकुल सन्नाटा छा गया। मैंने बिना ऊपर आंख, उठाये ही पढ़ना शुरू किया। उस वक्त मैं मन में ज़रा घबराया हुआ था, मेरा कलेजा धक-धक करता था और स्वर कांपता था। मेरे इस प्रकार पढ़ने पर सबसे पहले उस जर्मन ने सहानुभूति-सूचक शब्द कहे। मेरे पढ़ते समय वही एक व्यक्ति था, जो बीच-बीच में कुछ कहकर शान्ति भंग किया करता था-"क्या खूब ! वाह-वाह ! क्या कहा है !" आदि शब्दों को वह बार-बार दुहराता था और इसके साथ-ही-साथ समय-समय पर कहता जाता था, "ओह, यह तो कमाल कर दिया है !" पर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि प्रिइमकोव तंग आ रहा था। वह जर्मन-भाषा अच्छी तरह नहीं जानता था और यह बात तो वह स्वयं ही स्वीकार कर चुका था कि उसे कविता के प्रति रुचि नहीं, किन्तु यह उसकी अपनी ही

करनी थी। मैंने भोजन के समय इस बात का इशारा कर देना चाहा था कि पुस्तक पढ़े जाते समय उसका उपस्थित रहना आवश्यक नहीं, किन्तु इस प्रकार उससे कह देने में मुझे कुछ हिचक भी मालूम हुई। वेरा निकोलाएव्ना ज़रा भी इधर-उधर हिले-डुले बिना बैठी रही। दो-तीन बार मैंने चुपके-से उसकी ओर नज़र डाली थी। उसकी आंखें टकटकी लगाये ठीक मेरे ऊपर गड़ी हुई थी। उसका चेहरा मुझे पीला-सा मालूम पड़ा 'फाउस्त' की ग्रेथेन के साथ प्रथम मिलन के बाद वह आराम-कुर्सी पर आगे की ओर झुक गई, अपने दोनों हाथों की हथेलियों को साथ कर लिया और इस हालत में आखिर तक निश्चल बैठी रही। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रिइमकोव बिलकुल ही ऊब गया है। पहले तो इससे मैं कुछ निरुत्साह-सा हुआ, किन्तु फिर धीरे-धीरे मैं उसे भूल गया और उत्साह के साथ जोश में आकर पढ़ने लगा। मैं सिर्फ वेरा निकोलाएव्ना के लिए ही पढ़ रहा था। मेरे अन्तःकरण में कोई कह रहा था कि 'फाउस्त' का उसपर असर पड़ रहा है। पढ़ना समाप्त होने पर (एक विष्कम्भक भाग जो शैली की दृष्टि से दूसरे अंक से संबंधित है और 'ब्रोकन की रातों' से एक हिस्सा मैंने नहीं पढ़ा) जब मैंने अंत में 'हैरिह' शब्द पढ़ा तो उस जर्मन ने बड़े ही अनुभूति-सूचक शब्दों में आलोचना करते हुए कहा, "हे प्रभो, यह कितना सुन्दर है !" प्रिइमकोव दिखावटी आन्दातिरेक में उछल पड़ा, गहरी सांस छोड़ी और कहा, "आपने हम लोगों का जो मनोरंजन किया है, उसके लिए हमारा धन्यवाद स्वीकार कीजिये।" किन्तु मैंने उसके धन्यवाद का कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने वेरा निकोलाएव्ना की ओर देखा। मैं उसकी सम्मति जानना चाहता था। वह अपने स्थान

से उठी, धीरे-धीरे दरवाजे की तरफ गई और वहां एक क्षण तक ठहरकर बगीचे के बाहर चली गई। मैं भी उसके पीछे-पीछे दौड़ा। वह मुझसे कई कदम आगे थी।

उसके वस्त्र अन्धकार में श्वेत चिन्ह की तरह दीख पड़ते थे।

मैंने उसे पुकारकर कहा, "यह तो बताओ कि आपको यह पुस्तक पसन्द आई या नहीं ?"

वह रुक गई।

"क्या आप यह पुस्तक मेरे पास छोड़ सकते हैं ?"

"वेरा, यह पुस्तक आपकी भेंट है, यदि आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें।"

"धन्यवाद कह कर वह वहां से गायब हो गई। इसके बाद प्रिइमकोव और वह जर्मन मेरे पास आये।"

"प्रिइमकोव ने कहा, "बड़ी गर्मी है। दम-सा घुटा जाता है। मेरी पत्नी कहां गई ?"

मैंने जवाब दिया, "शायद वह अंदर चली गई है।"

उसने कहा,"मैं समझता हूं कि अब रात के भोजन का वक्त होने में देर नहीं है।" कुछ देर ठहरकर वह फिर बोला,"आप भी पढ़ने में कमाल करते हैं, इस कला में निपुण हैं।"

मैंने कहा, "मेरा खयाल है कि वेरा निकोलाएव्ना ने 'फाउस्त' को पसन्द किया।"

"इसमें भी कोई शक है !" प्रिइमकोव ने कहा।

"इसमें क्या सन्देह है !" शिम्मेल ने भी उसके सुर में सुर मिलाते हुए कहा। हम लोग घर के अन्दर गये।

"तुम्हारी मालकिन कहां है ?" प्रिइमकोव ने एक नौकरानी से पूछा, जो उस समय हम लोगों के सामने आ पहुंची थी।

"वह अपने सोने के कमरे में गई है।"

प्रिइमकोव उसके सोने के कमरे में चला गया।

मैं शिम्मेल के साथ बाहर चबूतरे पर चला आया। उस बुड्ढे ने आकाश की ओर अपनी आँखें उठाईं।

"आकाश में कितने नक्षत्र हैं ?" उसने तंबाकू की एक चुटकी सुंघते हुए धीरे-से कहा,"और ये नक्षत्र सब पृथक्-पृथक् लोक हैं। इतना कहा और फिर उसने दूसरी चुटकी लेली।

मैंने उसके इस कथन का उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा और सिर्फ ऊपर की ओर चुपचाप देखता रहा। किसी रहस्यपूर्ण अनिश्चित वस्तु के भार से मेरा हृदय दबा-सा जा रहा था। मुझे ऐसा खयाल होता था, मानो तारागण हमारी ओर बड़ी गम्भीरता से देख रहे हों। पांच मिनट के बाद प्रिइमकोव वहां आया और हम लोगों को भोजन के कमरे में आने के लिए कहा। वेरा निकोलाएवना इसके बाद तुरन्त ही आ पहुंची। हम सब वहां बैठ गये।

"ज़रा वेरा को तो देखिये।" प्रिइमकोव ने मुझसे कहा। मैंने उसकी ओर नज़र डाली।

"इनके चेहरे पर आपको कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती ?"

मुझे उसकी मुखाकृति में कुछ परिवर्तन तो ज़रूर दीख पड़ा, परन्तु मैंने न मालूम क्यों, उत्तर दिया, "नहीं, ज़रा भी नहीं।"

"देखो न, इनकी आंखें लाल हो गई हैं।" प्रिइमकोव कहता गया। मैं चुपचाप सुन रहा था।

"ज़रा खयाल तो करो, मैं जब सीढ़ी से होकर ऊपर उसके पास गया तो मैंने उसे रोते हुए पाया। उसका यह रोना बहुत दिनों के बाद देखा गया हैं। मैं आपको बता सकता हूं कि इससे पहले वह उस समय रोई थी, जबकि हमारी बच्ची साशा मर गई थी, देखिये तो आपने अपने 'फाउस्त' द्वारा इनकी क्या दशा कर डाली है !" प्रिइमकोव ने मुस्कराते हुए कहा।

मैंने कहना शुरू किया,"देखिये, वेरा निकोलाएव्ना, मैंने पहले ही कहा था... ।"

वेरा निकोलाएव्ना ने बीच ही में टोककर कहा, "मैंने ऐसी आशा कभी नहीं की थी। प्रभु ही जान सकता है कि आपका कथन ठीक है या नहीं। शायद यही कारण था कि मेरी मां ने मुझे इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने से मना किया था। वह जानती थी..." इतना कहकर वेरा निकोलाएव्ना चुप हो गई।

"वह क्या जानती थी ?" मैंने पूछा, "मुझे बताइये।"

"क्यों बताऊं ? मैं खुद ही इस बात के लिए लज्जित हूं कि मैं किसलिए रो रही थी। लेकिन इस सम्बंध में हम लोग पीछे बात करेंगे। उस पुस्तक में ऐसी बहुत-सी बातें थीं, जिन्हें मैं अच्छी तरह नहीं समझ सकी।"

"तो पढ़ते समय आपने मुझे रोका क्यों नहीं ?"

"मैं उन सब शब्दों को और उनके अर्थ को तो समझ गई थी, किन्तु..." इतना कहकर वह अपना पूरा वाक्य समाप्त किये बिना ही स्वप्न जैसी दशा में देखने लगी। उसी समय बाग से अचानक तेज हवा की सनसनाहट और उसके कारण पत्तों की खड़खड़ाहट की आवाज़ सुन पड़ी। वेरा निकोलाएव्ना चकित-सी होकर खुली हुई खिड़की की तरफ देखने लगी।

"मैंने आपसे कहा था न कि आंधी आयेगी।" प्रिइमकोव ने जोर से कहा, "परन्तु इस तरह तुम टकटकी लगाकर क्या देख रही हो, वेरा ?"

उसने बिना कुछ बोले ही प्रिइमकोव की ओर देखा। बहुत दूर बिजली की चमक के धुंधले प्रकाश ने उसकी निष्कम्प मुखाकृति पर एक रहस्यपूर्ण प्रकाश डाला।

प्रिइमकोव ने फिर कहा, "यह सब आपके 'फाउस्त' के ही कारण हुआ है। भोजन के बाद जल्दी सो जायें। क्यों, कहिये महाशय शिम्मेल, ठीक है न ?"

"पठन-पाठन का रसास्वादन करने के बाद शारीरिक विश्राम जितना ही उपकारी है, उतना ही लाभप्रद भी है।"-- उस दयालु-हृदय जर्मन ने उत्तर दिया और फिर एक जाम वोदका पी ली।

भोजन के बाद हम लोग अपने-अपने कमरे में गये। मैंने वेरा निकोलाएव्ना से विदा लेते हुए उससे हाथ मिलाया। हाथ ठंडा

था। जो कमरा मुझे सोने के लिए दिया गया था, उसमें मैं गया और पोशाक बदलकर और बिछौने पर जाने के पहले बहुत देर तक खिड़की के पास खड़ा रहा। प्रिझ्मकोव की भविष्यवाणी ठीक हुई । आंधी आ गई थी और प्रचंड रूप में चलने लगी थी। आंधी का गर्जना तथा वर्षा का शब्द सुनाई देने लगा था। मैं यह देखने लगा कि झील के ऊपर पास में ही बना हुआ गिरजाघर बिजली की हरेक चमक में कैसा दीखता है। एक क्षण में तो वह दृश्य ऐसा मालूम पड़ता था, मानो सफेद ज़मीन पर कोई काली चीज पड़ी हुई हो और दूसरे ही क्षण वह बदलकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो काली ज़मीन पर कोई सफेद चीज रखी हुई हो। इसके बाद वह दृश्य अन्धकार में बिलकुल विलीन हो जाता था। यद्यपि मेरी दृष्टि तो उस दृश्य की ओर थी, तथापि मेरे विचार उस समय कहीं और ही जा रहे थे। मैं वेरा निकोलाएव्ना के विषय में सोच रहा था कि वह स्वयं 'फाउस्त' पढ़ने के बाद मुझसे क्या कहेगी मुझे उसके आंसुओं का ख्याल हो आया, और इसके साथ-साथ यह भी स्मरण हो आया कि उसने किस प्रकार ध्यानपूर्वक मुझे पढ़ते सुना था।

आंधी को गुज़रे बहुत देर हो चुकी थी। तारे आकाश में फिर उग आये थे और चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। एक प्रकार की चिड़िया, जिसे मैं पहचानता नहीं था, विभिन्न स्वरों में गा रही थी और कभी-कभी एक ही शब्द को वह बार-बार दुहरा दिया करती थी। उस गम्भीर सन्नाटे में उसका स्पष्ट एकाकी शब्द आश्चर्यजनक मालूम पड़ता था। उस समय तक भी मैं बिछौने पर सोने नहीं गया था।

दूसरे दिन सबेरे मैं सब लोगों से पहले मुलाकाती कमरे में जा पहुंचा और श्रीमती येल्त्सोवा के चित्र के सामने खड़ा हो गया। "अहा !" --व्यंग्यपूर्ण विजय की एक गुप्त भावना के साथ मैंने विचार किया, "आखिर मैंने तुम्हारी लड़की को एक वर्जित पुस्तक पढ़कर सुना ही तो दी !" उसी दम मैंने खयाल किया-- तुमने शायद देखा होगा कि किसी चित्र की आंख हमेशा उस आदमी पर सीधी गड़ी हुई मालूम होती है, जो आमने-सामने होकर उसको देखता है, परन्तु उस समय मुझे निश्चय ही ऐसा खयाल हुआ कि उस चित्र में चित्रित वह वृद्धा स्त्री अपनी आंखों को घुमाकर मेरी ओर घृणा की दृष्टि से देख रही थी।

मैं घूमकर खिड़की के पास गया और वहां वेरा निकोलाएव्ना को देखा। कंधे पर एक छोटी-सी छतरी और सिर पर एक हल्का सफेद रूमाल रखे हुए वह टहल रही थी। मैं फौरन बाहर चला गया और उससे 'नमस्कार' कहा।

उसने कहा, "रात-भर सोई नहीं, मेरा सिर दुख रहा था, इसलिए मैं बाहर हवा में चली आई, जिससे मेरा सिर दर्द दूर हो जाए।"

"यह कल के पढ़ने का नतीजा तो नहीं है ?" मैंने पूछा।

"और क्या ? मैं इस तरह पढ़ने की आदी नहीं हूं। आपकी पुस्तक में कुछ ऐसी बातें हैं, जो मेरे दिमाग़ से बाहर ही नहीं निकलतीं। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो वे विचार मेरे सिर को चकरा रहे हों।" ऐसा कहकर उसने अपने माथे पर हाथ रखा।

मैंने कहा, "यह तो खूब रही ! परन्तु मैं आपसे जो एक बात कहना चाहता हूं और जो मुझे पसन्द नहीं है, वह यह है कि कहीं ऐसा-न हो कि इस अनिद्रा और सिर-दर्द के कारण आप इस प्रकार के विषयों के पठन-पाठन से ही विमुख हो जायें।"

"क्या आप ऐसा खयाल करते हैं ?" यह कहकर वह बनचमेली की एक टहनी तोड़ती हुई आगे बढ़ी, "ईश्वर ही जानता है। मैं सोचती हूं कि एक बार जिसने इस रास्ते पर पांव रखा, फिर उसके लिए वापस लौटना असम्भव है।" यह कहकर उसने एकाएक उस टहनी को फेंक दिया।

फिर वह बोली, "आइये, हम दोनों इस लताकुंज में बैठ जायं, परन्तु कृपया उस पुस्तक के सम्बन्ध में मुझे याद न दिलायें, जबतक कि मैं खुद ही उसके बारे में चर्चा न करूं।" (वह पुस्तक का नाम तक लेने से डरती थी !)

हम दोनों उस लताकुंज में गये और वहीं बैठ गये।

फिर मैंने कहा, "मैं आपसे 'फाउस्त' पुस्तक की चर्चा नहीं करूंगा, परन्तु मैं आपको बधाई देता हूं और आपसे यह भी कहता हूं कि मैं आपके सौभाग्य पर ईर्ष्या करता हूं।"

"आप मुझपर ईर्ष्या करते हैं।"

"जी हां, आपको इस समय में जैसा समझ रहा हूं और आपकी जैसी आत्मा है, उससे मैं जानता हूं कि आपके भाग्य में इस प्रकार के बहुत-से आनन्दों का भोग बदा है। गेते के सिवा और भी बहुत-से महाकवि हैं--शेक्सपियर, शिलर आदि, और हमारे रूसी कवि

पुश्किन। इन कवियों के विषय में भी आपको जानना चाहिए।"

वह कुछ बोली नहीं, अपनी छतरी से बालू में लकीर खींचने लगी।

मेरे दोस्त, सेम्योन निकोलाएविच, उस क्षण यदि तुम उसे देख पाते, वह कितनी मधुर मालूम होती थी। चेहरा इतना उज्जवल कि आर-पार देख लो। आगे की ओर कुछ झुकी हुई, थकी-सी और भीतर से कुछ घबराई हुई होने पर भी वह आकाश जैसी शान्त प्रतीत होती थी। मैंने उससे बातें कीं, बहुत देर तक बातचीत का आनन्द उठाया और फिर बातें करना बन्द करके मैं चुपचाप बैठ गया और उसे देखने लगा।

उसने अपनी आंखें ऊपर नहीं उठाईं और पहले के समान ही अपनी छतरी से बालू में लकीरें खींचती और मिटाती रही। एकाएक हमें किसी बच्चे के जल्दी जल्दी आने की आहट सुन पड़ी। नताशा उस कुंज में दौड़ती हुई आ पहुंची। वेरा निकोलाएव्ना सीधी होकर उठ बैठी और फिर उसने अपनी उस लड़की का आवेश में आकर गाढ़ आलिंगन किया। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसका यह आचरण बिलकुल नवीन था। इसके बाद प्रिइमकोव वहां आ पहुंचा। बूढ़ा शिम्मेल, जो अपने समय का बड़ा पाबन्द था, सवेरे से पहले ही वहां से चला गया था, ताकि पढ़ाना न छूटने पावे। हम लोग चाय पीने चले गये।...

किन्तु इस समय मैं थक गया हूं। अब इस पत्र को समाप्त करना बहुत जरूरी है। मुझे दीखता है कि मेरा यह पत्र तुम्हें

मूर्खतापूर्ण और भ्रान्तिमय मालूम पड़ेगा। मैं खुद ही अपने को घबराया हुआ-सा अनुभव करता हूं। मैं इस समय आपे से बाहर हो रहा हूं। नहीं जानता, इस समय मेरा क्या हाल हो रहा है। मेरे दिमाग में निरन्तर एक छोटा कमरा, उसकी सादी दीवारें, एक लैम्प, एक खुला दरवाजा, रात की ताजगी और सुगन्ध, वहां दरवाजे के पास एक यौवनपूर्ण चेहरा और हलकी सफेद पोशाकें--ये सब चीजें घुसी रहती हैं। अब मैं समझ रहा हूं कि पहले मैंने उसके साथ क्यों विवाह करना चाहा था। अब मुझे मालूम पड़ता है कि बर्लिन जाने से पहले मैं उतना मूर्ख नहीं था, जितना कि मैंने अबतक अपनेको मान रखा था। हां, सेम्योन निकोलाएविच, तुम्हारे मित्र के मन की अजीब् दशा हो रही है। मैं जानता हूं कि यह सब-कुछ गुज़र जायेगा। और अगर यह नहीं भी गुज़रे तो इससे होगा ही क्या ? यह नहीं गुज़रेगा, बस, इतना ही न ? परन्तु किसी भी दशा में मैं अपने-आपसे पूर्ण सन्तुष्ट हूं। पहली बात तो यह है कि मैंने बड़े मज़े के साथ एक आन्नदप्रद संध्या व्यतीत की, एक लाभ तो यह हुआ और दूसरे, यदि मैंने वेरा निकोलाएव्ना की आत्मा को जाग्रत कर दिया है तो इसके लिए मुझे कौन दोषी ठहरा सकता है ? बूढ़ी येल्त्सोवा इस समय दीवार पर गड़ी हुई है और वहीं वह चुपचाप बनी रहे। बेचारी बुढ़िया कहीं की ! मैं उसके जीवन की सभी बातों से परिचित नहीं हूं, पर इतना तो मैं जरूर जानता हूं कि वह अपने बाप के घर से भाग गई थी। उसकी मां तो एक इटालियन स्त्री थी। अपनी लड़की को सुरक्षा के साथ रखना चाहती थी ! ...अच्छा, हम देख लेंगे।

अब मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूं। तुम्हारे जैसे ताना मारनेवाले आदमी से मैं यही प्रार्थना करूंगा कि तुम मेरे विषय में चाहे जैसा खयाल करो, किन्तु पत्र में मुझपर चुटकी न लेना। हम और तुम पुराने दोस्त हैं, इसलिए एक दूसरे को माफ कर देना चाहिए।

अच्छा, विदा।

तुम्हारा

प० ब०

पांचवीं चिट्ठी

म...ओए ग्राम,

२० जुलाई, १८५०

प्रिय सेम्योन निकोलाएविच,

मैं समझता हूं कि एक मास से अधिक हुआ, जबकि मैंने तुम्हें पत्र लिखा था। इस अरसे में लिखने को तो बहुत-कुछ था, परन्तु आलस्यवश लिख नहीं सका। सच बात तो यह है कि इधर मैंने शायद ही तुम्हारा खयाल किया हो। तुम्हारे अन्तिम पत्र से मुझे प्रतीत होता है कि तुम मेरे विषय में कुछ नतीजा निकाल बैठे हो। यह नतीजा मेरी समझ में अन्याय है, या यों कहो कि पूर्णतया न्याययुक्त नहीं है। तुम्हारा खयाल है कि मैं वेरा के प्रेम में फंस गया हूं (मुझे उसे वेरा निकोलाएव्‌ना कहकर सम्बोधन करना अच्छा नहीं लगता), मगर यह खयाल तुम्हारा गलत है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं उससे बहुधा मिला करता हूं और सचमुच उसे चाहता भी बहुत हूं, परन्तु कौन ऐसा है जो उसे नहीं चाहेगा ? क्या ही अच्छा होता, यदि तुम यहां मेरी जगह होते !

वह एक उत्कृष्ट प्राणी है। उसका अन्तर्ज्ञान और उसके साथ-साथ बच्चों जैसी अनुभवहीनता, उसकी स्पष्ट सहजबुद्धि, सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक भावना, महत् और सत्य के प्रति सतत् चेष्टाशीलता तथा प्रत्येक वस्तु की-- यहांतक कि खोटी और उपहास-योग्य वस्तु की--भी समझने की शक्ति, उसकी स्त्रियोचित्त कोमल मोहकता, जो देव-दूत की तरह उसकी रक्षा करती रहती

है। किन्तु शब्दाडम्बर से क्या लाभ ? इस मास में हम दोनों ने एक साथ मिलकर बहुत-कुछ पढ़ा है, बहुत बातचीत भी की है। उसके साथ पढ़ने में मुझे इतना आनन्द मिलता है, जितना पहले मैंने कभी अनुभव नहीं किया था। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो हमें नये देशों का पता लग रहा हो। वह किसी विषय को लेकर आनन्दातिरेक में विह्वल नहीं हो जाती, किसी विषय की प्रचंडता उसे पसन्द नहीं आती। जब किसी वस्तु को वह चाहती है तो उसका सारा शरीर स्निग्ध रूप में उद्‌भासित हो उठता है और उसका मुखमंडल बड़ा सुन्दर और भव्य रूप धारण कर लेता है। अपने छुटपन से ही कभी उसने जाना ही नहीं कि छल-कपट क्या चीज है। उसे सच बोलने का ही अभ्यास है, सच ही उसके जीवन की सांस है। इसी प्रकार कविता में भी जो सच है, उसे वह फौरन स्वाभाविक जान कर ताड़ जाती है, और बिना किसी प्रयत्न या प्रयास के वह परिचित व्यक्ति की तरह उसे पहचान लेती है। बड़े सौभाग्य से ही किसी को ऐसा आनन्दप्रद स्वभाव मिलता है। उसके इस गुण के लिए उसकी मां की तारीफ करनी चाहिए। वेरा को देखकर कितनी ही बार मैंने सोचा है कि गेते ने ठीक ही कहा है कि "भले लोग अपने गूढ़ प्रयत्न में भी इस बात का हमेशा अनुभव करते रहते हैं कि सन्मार्ग किस ओर है।"

एक ही बात ऐसी है, जिससे मुझे बहुत तंग होना पड़ता है-- निरन्तर पास ही में उसके स्वामी की उपस्थिति। (कृपया मेरी बात पर व्यर्थ ही मत हँस पड़ना और हमारी विशुद्ध मैत्री के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कलुषित भाव अपने विचार में भी न लाना)। पतिदेव

में कविता समझने की उतनी ही योग्यता है, जितनी मुझमें बांसुरी बजाने की, किन्तु इस विषय में वह अपनी स्त्री से पीछे रहना नहीं चाहता और वह अपनेको विकासशील भी बनाना चाहता है। पर कभी-कभी तो वेरा खुद ही मुझे अधीर बना देती है। अचानक उसकी मनोवृत्ति बदल जाती है। उस समय वह न तो कुछ पढ़ती है और न किसी से कुछ बातचीत ही करती है। वह कसीदा काढ़ने लगती है, अपनी लड़की नताशा को प्यार करने लगती है, या गृह-रक्षिका के साथ काम में लग जाती है। फौरन दौड़कर रसोईघर में चली जाती है या सिर्फ हाथ समेटकर बैठ जाती है और खिड़की के बाहर देखने लगती है, या आया के साथ ताश खेलने लगती है। मैंने यह ध्यानपूर्वक देखा है कि ऐसे अवसरों पर उसे तंग करना ठीक नहीं। इससे अच्छा है कि जबतक उसका मन ठीक न हो जाय, बातचीत या कोई पुस्तक पढ़ना शुरू न कर दे, तबतक के लिए प्रतीक्षा की जाये। उसमें स्वाधीनता बहुत काफी है और इसकी मुझे खुशी है। क्या तुम्हें याद है कि हम लोगों की जवानी के दिनों में जवान लड़कियां कभी-कभी किसी व्यक्ति की कही हुई बातों को दुहराया करती थीं, और यह दुहराना किस प्रकार होता है, इसे वे अच्छी तरह नहीं जानती थीं। जिस व्यक्ति के शब्दों को वे दुहराती थीं, वह अपने शब्द की प्रतिध्वनि सुनकर आनन्द के मारे फूला नहीं समाता था और इससे सम्भवत: प्रभावित भी बहुत हो जाता था, जबतक कि उसे इस बात का अनुभव नहीं हो जाता कि इस प्रकार दुहराने का अभिप्राय क्या है। किन्तु इस महिला के साथ यह बात नहीं है। वह खुद विचार करती है और सिर्फ विश्वास पर ही किसी बात को नहीं मान लेती। "यह बात किसी प्रामाणिक अधिकारी की कही हुई है"-- यह कहकर

उसे डराया नहीं जा सकता। पहले वह तर्क-वितर्क करना आरम्भ नहीं करती, मगर तर्क-वितर्क करने में वह दबती भी नहीं। हम दोनों ने अनेक बार 'फाउस्त' के सम्बन्ध में वाद-विवाद किया है। आश्चर्य तो यह है कि ग्रेथेन के विषय में वह खुद कुछ भी नहीं कहना चाहती। मैं उसके विषय में जो कुछ उससे कहता हूं, उसे वह ध्यानपूर्वक सुना करती है। मेफ़िस्तोफ़ेल उसे एक शैतान के रूप में नहीं, बल्कि 'एक ऐसी चीज के रूप में, जो प्रत्येक मनुष्य में पाई जा सकती है' भयभीत करता है। ये शब्द खुद उसके ही हैं। मैंने उसे यह विश्वास दिलाना शुरू किया है कि 'वह चीज वही है, जिसे हम 'चिन्तन' (रिफ़्लैक्शन) कहते हैं, किन्तु जर्मन-भाषा में इस शब्द का जो अर्थ समझा जाता है, उस अर्थ में वह इस शब्द को नहीं समझती वह सिर्फ फ्रेंच भाषा के 'चिन्तन' शब्द को जानती है और इसे ही लाभप्रद समझा करती है। हम लोगों का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही आश्चर्यजनक है। एक दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि मेरा उसके ऊपर बहुत प्रभाव है, और ऐसा प्रतीत होता है, मानो मैं उसे शिक्षा दे रहा हूं, परन्तु उसके साथ-साथ वह भी--यद्यपि वह खुद इसे जानती नहीं है-- अनेक प्रकार से मुझमें सुधार कर रही है। उदाहरण के रूप में अभी हाल ही में मुझे उसकी बदौलत यह पता चला है कि बहुत-सी उत्तम और सुप्रसिद्ध काव्य-रचनाओं में भी काव्य के रूढ़िगत लक्षण और अलंकार आदि कितनी अधिक मात्रा में पाया जाते हैं। जिस बात को सुनकर उसपर कुछ भी असर नहीं पड़ता, उसके विषय में मुझे खुद शक होने लगता है। हां, मैं पहले से अधिक अच्छा और गम्भीर बन गया हूं। उसके पास रहकर और उसे बराबर देखते हुए कोई पहले जैसा रह ही नहीं सकता।

तुम पूछोगे कि आखिर इन सब बातों का क्या नतीजा होगा? मैं तो सचमुच विश्वास करता हूं कि कुछ नहीं। मैं सितम्बर तक यहां रहकर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करूंगा और उसके बाद चला जाऊंगा। प्रारम्भ के कई महीनों में जीवन मुझे अन्धकारपूर्ण और सुनसान मालूम पड़ेगा, किन्तु धीरे-धीरे मैं इसका अभ्यस्त हो जाऊंगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि एक पुरुष और एक युवती स्त्री के बीच किसी भी प्रकार का सम्बन्ध कितना खतरनाक है। किस प्रकार अदृश्य रूप में एक भावना के बाद दूसरी भावना आती है।... यदि मुझे इस बात का निश्चय नहीं होता कि हम दोनों पूर्णतया स्थिर-चित्त और निश्चिन्त हैं तो निश्चय ही मुझमें इतनी शक्ति अवश्य है कि मैं इस सम्बन्ध को तोड़ देता। यह सच है कि एक दिन हम दोनों के बीच एक विलक्षण बात हो गई। मैं नहीं जानता कि किस प्रकार या किस कारण से--इतना मुझे स्मरण है कि उसे मैं उस समय 'आनेगिन' पढ़कर सुना रहा था-मैंने उसका हाथ चूम लिया। वह मुझसे कुछ दूर हट गई और मेरी ओर टकटकी बांध कर देखने लगी। (इस प्रकार की चितवन मैंने उस समय के अलावा और कभी नहीं देखी है। उसकी इस चितवन में स्वप्नशीलता और तन्मयतापूर्ण ध्यान है और उसके साथ-साथ एक प्रकार की कठोरता भी है) फिर एकाएक चौंककर वह वहां से उठी और चली गई। मैं उस दिन उसके साथ अकेले रहने में सफल न हो सका। वह मुझे टालकर चार घंटे तक पति, धाय और शिक्षिका के साथ ताश खेलती रही। दूसरे दिन उसने मुझसे बगीचे में टहलने का प्रस्ताव किया।

हम दोनों बगीचे में टहलते हुए झील तक गये। अचानक वह

मेरी ओर मुड़े बिना ही धीरे-से बोली, "कृपया फिर ऐसा न करना।" इतना कहकर उसने फौरन दूसरी बात छेड़ दी। मुझे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा।

मैं यह स्वीकार करता हूं कि वह मेरे मन से कभी जाती नहीं, इतना बल्कि मैं यह भी कहूंगा कि सचमुच मैंने तुम्हारे पास इसी उद्देश्य से पत्र लिखना शुरू कर दिया है, जिससे मुझे उसके सम्बन्ध में सोचने और बातचीत करने का मौका मिले। इन पंक्तियों के लिखते समय मैं अपने घोड़े के पैरों की आहट और उसकी हिनहिनाहट सुन रहा हूं। मेरी गाड़ी तैयार हो रही है, मैं उन से मिलने जा रहा हूं। अब जब मैं अपनी गाड़ी में सवार होता हूं तो मेरा कोचवान मुझसे यह नहीं पूछता कि कहां ले चलूं। वह सीधा प्रिइमकोव के घर की तरफ गाड़ी ले चलता है। उनके गांव से डेढ़ मील की दूरी पर जहां से एकाएक सड़क मुड़ जाती है, उन लोगों का घर बिर्योजा के पेड़ों की एक कुंज के पीछे से नज़र आने लगता है। दूर से ही उस घर की खिड़कियों की झिलमिल लाइट जब-जब मुझे दीख पड़ती है, मेरा हृदय आनन्द से लहक उठता है। शिम्मेल ने (यह बुड्ढा निर्दोष आदमी है, जो समय-समय पर उन लोगों से मिलने आया करता है। कन्याज ख० उनसे एक ही बार मिलने आये हैं, इसे ईश्वर की कृपा मानिये) नम्रता-युक्त गम्भीरता के साथ, जो उसका विशेष गुण है, उस घर को--जहां वेरा रहा करती है, दिखलाते हुए बहुत ठीक कहा था--"यह शान्ति का वासस्थल है !" इस घर में शान्ति का देवदूत वास करता है।

अपना पंख मुझपर पहना दो,
हृदय की अशांति को कम करो।
मेरी मोहित आत्मा के लिए,
छाया लाभदायक होगी।

परन्तु अब इस सम्बन्ध में अधिक कहने की ज़रूरत नहीं, अन्यथा तुम मेरे बारे में न मालूम कितनी तरह की बातें सोचने लगोगे। अगले पत्र तक के लिए--यद्यपि मुझे आश्चर्य मालूम हो रहा है कि आगे मैं फिर तुम्हें क्या लिखूंगा--मेरा नमस्कार लो। इस प्रसंग में तुम्हें यह भी बताये देता हूं कि वेरा चलते समय मुझसे कभी नमस्कार नहीं करती, बल्कि वह हमेशा कहा करती है--"अच्छा, अब विदा।" इसके इस प्रकार कहने के ढ़ंग को मैं बहुत ही पसन्द करता हूं।

तुम्हारा

प० ब०

पुनश्च--मुझे यह याद नहीं है कि मैंने तुम्हें यह बतलाया है या नहीं कि वेरा इस बात को जानती है कि मैं पहले उससे विवाह करना चाहता था।

छठी चिट्ठी

म...ओए ग्राम,
१० अगस्त, १८५०

प्यारे मित्र,

शायद तुम मुझसे ऐसे पत्र की आशा कर रहे हो, जिसमें या तो निराशा अथवा परमानन्द का समावेश पाया जाय, पर इन दोनों में एक भी बात नहीं है। मेरा यह पत्र भी पहले के किसी पत्र के समान ही होगा। कोई नई बात नहीं हुई है और मैं खयाल करता हूं कि किसी नई बात के होने की सम्भावना भी नहीं है। एक दिन हम लोग एक नाव पर सवार होकर झील में गये थे। मैं तुमसे इस नौका-विहार के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। हम लोग कुल तीन आदमी थे--वेरा, शिम्मेल और मैं। मैं नहीं जानता कि किस कारण वह इस बुड्ढे आदमी को अक्सर बुलाया करती है। मुझे मालूम हुआ है कि क्न्याज़ ख० इस बात से नाराज़ भी है कि यह जर्मन अपने अध्यापन कार्य की उपेक्षा करता है, यद्यपि इस अवसर पर उसका साथ रहना हम लोगों के लिए आनन्ददायक ही था। प्रिइमकोव हम लोगों के साथ नहीं आया था। उसके सिर में दर्द था। मौसम बहुत ही सुन्दर और मनोहर था। बड़े-बड़े सफेद बादल नीले आकाश में खंड-खंड जैसे फैले हुए प्रतीत हो रहे थे। जिधर देखो, उधर ही चकमक दिखाई देती थी--वृक्षों की सनसनाहट, पानी का किनारे में छपछपाना, तरंगों पर सुनहले लच्छों का बनना और बिगड़ना, ताजगी और प्रकाश। पहले मैंने और उस जर्मन ने मिलकर डांडें चलाईं। इसके बाद हमने पतवार

बांधकर हवा में छोड़ दी। किश्ती का किनारा पानी में डूब-सा गया और पतवार के साथ पानी के छपकने की आवाज सुनाई पड़ने लगी। वेरा पतवार के पास बैठ गई और किश्ती खेने लगी। उसने अपने सिर पर एक रूमाल बांध लिया था, क्योंकि हवा के कारण टोपी नहीं पहन सकती थी। उसके घुंघराले बाल उसके सिर पर बंधे हुए रूमाल के अन्दर से निकलकर इधर-उधर हवा में उड़ रहे थे। वह अपने धूप में झुलसे हुए छोटे-से हाथ में जोर से पतवार पकड़े हुए थी। पानी के छींटे कभी-कभी उड़कर उसके चेहरे पर पड़ते थे, जिससे वह मुस्करा देती थी। मैं नाव के अन्दर उसके पांव के पास ही सिकुड़कर बैठा हुआ था। जर्मन पाइप निकालकर पीने लगा और मनोहर स्वर में गाने लगा। उसने कई तरह के गाने गाये। पहले तो उसने एक पुराने ढंग का गाना गया। फिर 'जादूगर बांसुरी' से एक गीत, फिर 'प्रेम की वर्णमाला' गाई, जिसके पद्यों के प्रारंम्भ में 'अ', 'बे', 'त्से', 'दे'--वेन इख दिख़ ज़ेए,[1] से लेकर 'उ','फाऊ', वे इक्स--मख़ ऐनेन क्निक्स[2] आये थे। उसने यह सब पद्य बड़े भाव से गाया और जब 'क्निक्स' शब्द गाता था तो चालाकी से अपनी बाईं आंख मार देता था। वेरा उसके गाने को सुनकर हँस पड़ी और उसकी ओर इशारा करके अपनी उंगली को हिला दिया।

मैंने कहा, "मेरा तो यह खयाल है कि शिम्मेल भी अपने ज़माने में एक चालाक आदमी रहें होंगे।"

---

१. जब मैं तुम्हें देख लेता हूं (जर्मन)

२. झुककर नमस्कार करो (जर्मन)

"हां, जरूर, मैं तो पीछे नहीं होता था।" शिम्मेल ने रोब के साथ जवाब दिया। उसने पाइप से राख अपने खुले हाथ पर झाड़ी और अपने मुख के एक कोने में दांतों के बीच पाइप को दबाये हुए तमाखू की झोली को अपने हाथ से टटोलने लगा। फिर इसी अवस्था में उसने कहना शुरू किया, "जब मैं विद्यार्थी था, अहा, हा, हा !" इतना कह कर वह चुप हो गया उसका यह-अहा,हा,हा।" कहना भी बड़ा विलक्षण था। वेरा ने उससे विद्यार्थियों के कुछ गीत गाने की प्रार्थना की। उसने इसकी प्रार्थना पर एक गाना 'पीले रंग का तंबाकु' गाकर सुना दिया, पर गाने के अन्तिम चरण पर पहुंचकर बहुत प्रफुल्ल होकर उसकी सांस टूट गई। इस समय हवा ज़ोर से चलने लगी थी, पानी के ऊपर उठनेवाली लहरें भी पहले की अपेक्षा काफी बड़ी होने लगी थीं और नाव कुछ-कुछ एक तरफ झुक-सी गई थी। हमारे चारों तरफ पानी के ऊपर लस्तोच्का नामक पक्षी इधर-उधर उड़ रहे थे। हम लोगों ने पतवार ढीली कर दी और नाव को हवा के अनुकूल चलने दिया। अचानक आंधी का एक झोंका आया, जिससे हम लोगों को पतवार ठीक करने का समय नहीं मिला। पानी की एक लहर नाव के किनारे के ऊपर थपेड़ा मारकर चली गई, जिससे नाव के अन्दर बहुत-सा पानी चला आया। इस अवसर पर उस जर्मन ने साहस दिखलाते हुए मेरे हाथ से रस्सी छीन ली और पतवार को यह कहते हुए ठीक कर दिया, "कुक्स-हाफेन में इस तरह किया जाता है।"

शायद वेरा बहुत डर गई थी, क्योंकि उसका चेहरा पीला पड़ गया था, परन्तु जैसा कि उसका तरीका है, वह एक शब्द भी नहीं

बोली और अपने कपड़े के नीचे के हिस्से को उठा लिया और नाव के बीच की लकड़ी पर पांव रख दिये। इसी समय मुझे एकाएक गेते की कविता याद आ गई। (कुछ समय से मैं गेते की कविता में बिलकुल डूब रहा हूं।) तुमको यह कविता याद है ?

"जल-तरंग के ऊपर हजारों चमकते तारागण करते हैं नृत्य।" मैंने इस कविता को जोर-से सुनाया। जब मैं कविता की इस पंक्ति पर पहुंचा--"मेरी आंखों की पुतली तुम नीचे देख रही हो क्यों ?" वेरा ने अपनी आंखें कुछ ऊपर की ओर उठाईं (मैं उससे कुछ नीचे पर बैठा हुआ था और उसकी दृष्टि मेरे ऊपर गड़ी हुई थी) और हवा से अपनी आंखों को फेरती हुई वह बड़ी देर तक सुदूर की ओर देखती रही।

एक क्षण के बाद ही हल्की-सी वर्षा होने लगी। बूंदें पटपटा गिरकर पानी के ऊपर बुलबुले के रूप में प्रकट होने लगीं। मैंने वेरा को अपना ओवरकोट दिया, जिसे उसने अपने कंधों के ऊपर रख लिया।

हम लोग किनारे पर पहुंचे--घाट पर नहीं--और वहां से टहलते हुए घर गये । मैंने अपनी बांह का उसे सहारा दिया। मुझे ऐसा मालूम पड़ रहा था कि मैं उससे कुछ कहना चाहता था, किन्तु मैंने कुछ कहा नहीं, यद्यपि मुझे इतना याद है कि मैंने उससे पूछा था, "जब आप घर पर रहती हैं, तब आप हमेशा अपनी मां की तसवीर के नीचे उस तरह क्यों बैठी रहती हैं, जैसे कि एक छोटी चिड़िया अपनी मां के डैने के नीचे बैठा करती है ?"

"आपकी यह उपमा बहुत ही यथार्थ है।'' उसने उत्तर दिया,

"मैं अपनी मां के डैने से कभी बाहर निकलना नहीं चाहती।''

मैंने पूछा, "क्या आप स्वतन्त्र होकर विचरण करना पसन्द नहीं करेंगी ?'' मेरे इस प्रश्न का उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मैं नहीं जानता कि मैंने क्यों इस नौका-विहार का यहां पर वर्णन किया है। शायद इसका कारण यह हो सकता है कि पिछले दिनों में जो बातें हुई हैं, उनमें यह घटना मेरी स्मृति में एक अत्यन्त समुज्ज्वल वस्तु के रूप में विद्यमान है, यद्यपि सच यह है कि इसे कोई घटना कैसे कह सकता है ? मुझे इससे इतने सुख का अनुभव हुआ और हृदय में इतनी अनिर्वचनीय प्रसन्नता मालूम हुई कि मेरी आंखों से आनन्द के हल्के आंसू करीब-करीब टपकने लगे।

अहा ! सोचो तो सही, इसके दूसरे दिन, जबकि मैं बगीचे में लता-कुंज के पास टहल रहा था, एकाएक मुझे किसी स्त्री की आनन्द दायिनी संगीतमयी कंठध्वनि सुन पड़ी--'अपनी जिन्दगी से खुश हों।' मैंने झांककर लता-कुंज में देखा तो वहां वेरा थी। मैं चिल्ला उठा, "शाबाश ! मुझे यह मालूम नहीं था कि आपकी कंठध्वनि इतनी मधुर है।" वह थोड़ी लज्जित-सी हो गई और कुछ बोली नहीं। सच कहूं, उसकी कंठध्वनि बड़ी ऊंची और अच्छी है।

मुझे लगता है, वेरा को इस बात का आभास नहीं मिला था कि उसका गला इतना अच्छा है। उसके अन्दर न मालूम कितनी अलभ्य सम्पत्ति के खजाने छिपे हुए पड़े हैं ! वह खुद भी अपनेको नहीं जानती। क्या मेरा यह कथन ठीक नहीं है कि आजकल के जमाने में ऐसी स्त्री बिरले ही पाई जाती है ?

१२ अगस्त

कल हम लोगों में बडा ही अचरजभरा वार्तालाप हुआ था। पहले हमने भूत-प्रेतादि का विषय छेड़ा। ज़रा खयाल तो करो कि वह भूत-प्रेतादि में विश्वास करती है और कहती है कि इस विश्वास के लिए उसके कारण भी हैं। प्रिइमकोव ने, जो वहां बैठा हुआ था, अपनी आंखें नीची कर लीं और अपना सिर हिलाया, मानो वह उसके कथन का समर्थन कर रहा हो। मैंने उससे सवाल पर सवाल करना शुरू कर दिया, किन्तु मुझे शीघ्र ही ऐसा मालूम होने लगा कि इस विषय की बातचीत उसे पसन्द नहीं आ रही है। फिर हमने कल्पना और उसकी शक्ति के सम्बन्ध में बातें करना शुरू किया। मैंने उन लोगों से कहा कि युवावस्था में मैं सुख के बहुत सारे स्वप्न देखा करता था। (इस प्रकार के स्वप्न ऐसे ही लोग विशेषत: देखा करते हैं, जिन्हें अपने जीवन में कभी सुख-सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है या जिनके दिन बुरी तरह कट रहे हैं) मेरा एक स्वप्न यह था कि मैं उस आनन्द के सम्बन्ध में सोचा करता था, जो मुझे उस स्त्री के साथ, जिससे मैं प्रेम करूं, कुछ सप्ताह वेनिस में बिताने में प्राप्त होगा। मैं बहुधा इस विषय पर, विशेषत: रात में, इतना अधिक सोचा करता था कि धीरे-धीरे मेरे मन में उसकी पूरी तसवीर जम गई, जिसे मैं चाहे जब अपने नेत्रों के सम्मुख बुला सकता था। इसके लिए मुझे सिर्फ आंखें बन्द कर लेनी पड़ती थीं। इस समय मैं जो कुछ कल्पना किया करता था, वह यह थी--"रात्रि का समय है, चन्द्रमा अपनी स्निग्ध और उज्ज्वल चन्द्रिका छिटका रहा है। सुबास चली आ रही है। किसकी ? नींबू की ? नहीं, मधुमास और नागफली की। दूर-दूर तक जल दिखाई-पड़ रहा है। जैतून के वृक्षों से भरा

हुआ एक समतल द्वीप है। उस द्वीप के ऊपर तट-प्रदेश के निकट एक संगमरमर निर्मित भवन है और उसकी खिड़कियां खुली हुई हैं। किसी अज्ञात स्थान से संगीत-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। घर के अन्दर काली पत्तियोंवाले वृक्ष हैं और अर्द्धछायान्वित दीप का प्रकाश। एक खिड़की पर भारी मखमल का एक लबादा पड़ा हुआ है, जिसके किनारों पर सुनहला काम है और जिसका एक छोर पानी की ओर लटक रहा है। उस लबादे के ऊपर अपनी बांहों को रखे हुए हम दोनों (स्त्री-पुरुष) सुदूर वेनिस के दृश्य देख रहे हैं।" यह सारा दृश्य मेरे मानस-पटल पर इतने स्पष्ट रूप में उदय होता गया, मानो मैंने इसे स्वयं अपनी आंखों से देखा हो। वेरा ने मेरी इन बेसिर-पैर की बातों को ध्यानपूर्वक सुना और कहा, "मैं भी बहुधा स्वप्न देखा करती हूं, किन्तु मेरे सपने कुछ और तरह के होते हैं। मुझे स्वप्न में ऐसा खयाल आता है, मानो मैं अफ्रीका के रेगिस्तान में किसी बटोही के साथ विचरण कर रही हूं, अथवा बर्फ जमे हुए उत्तरी सागर में फ्रैंकलिन का पता लगा रही हूं।"

उसने उन सब कठिनाइयों की कल्पना भी स्पष्ट कर रखी थी, जो उसे सहन करनी पड़ेगी और जिन मुसीबतों का उसे सामना करना होगा।

"तुमने तो यात्रा-विषयक बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी हैं !" उसके पति ने कहा।

उसने उत्तर दिया, "शायद। परन्तु यदि मनुष्य के लिए स्वप्न देखना अनिवार्य ही है तो फिर ऐसे विषय का ही स्वप्न क्यों देखा जाय, जो अप्राप्य हो ?"

मैंने उसके उत्तर में कहा, "क्यों, अप्राप्य वस्तु का स्वप्न देखने में क्या हर्ज है ? बेचारी अप्राप्य वस्तु ने क्या अपराध किया है, जो आपने उसे इतना निन्दनीय समझ लिया ?"

वेरा ने प्रत्युत्तर में कहा, "मैंने यह नहीं कहा था। मेरे कथन का अभिप्राय यह था कि अपने सम्बन्ध में और अपने सुख के सम्बन्ध में स्वप्न देखने की क्या जरूरत है ? उस विषय का विचार करना ही व्यर्थ है, वह तो मिलनेवाला ही नहीं। फिर उसके पीछे पड़ने से क्या लाभ? यह तो स्वास्थ्य की तरह है। जबतक आप स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता नहीं करते, तबतक वह आपके पास मौजूद है।"

उसके इन शब्दों को सुनकर मैं चकित हो गया। मेरी इस बात को तुम ठीक मान लो कि इस स्त्री की आत्मा महान् है। इस प्रकार वार्तालाप के प्रसंग में हम वेनिस को छोड़कर इटली और वंहां के निवासियों पर जा पहुंचे। प्रिइमकोव वहां से चला गया और वहां रह गये सिर्फ हम दोनों -- वेरा और मैं।

मैंने कहा, "आपकी नसों में इटली का रक्त भी प्रवाहित है।"

उसने कहा, "हां।" और फिर बोली, "क्या मैं आपको अपनीं नानी का चित्र दिखलाऊं ?"

मैंने कहा, "जरूर।"

वह अपनी बैठक के कमरे में चली गई और सोने का एक बड़ा सा तुकमा[१] ले आई। उसे खोलने पर मैंने श्रीमती येल्त्सोवा

१. छोटे-से पाउडर बाक्स के समान होता है, जिसके अंदर कोई तस्वीर लगाई जाती है।

के पिता और उसकी पत्नी के छोटे-छोटे चित्र बहुत ही उमदा तरीके से रंगे हुए देखे। उसकी वह पत्नी अलबानो की एक किसान औरत थी। वेरा के नाना और उसकी लड़की के चेहरे में समानता देखकर मैं चकित रह गया। सिर्फ उसकी रूपरेखा कुछ अधिक कठोर, तीक्षण और कठिन जान पड़ती थी। उसकी छोटी-छोटी पीले रंग की आंखों में एक प्रकार के दुराग्रह की झलक मालूम पड़ रही थी। उस इटली-निवासी स्त्री का चेहरा एक पूर्ण प्रस्फुटित गुलाब के फूल जैसा खिला हुआ और कामुकतापूर्ण जान पड़ता था। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी और उसके लाल होठों पर शान्त मुस्कान शोभा दे रही थी।

उसके कोमल कामुक नथने कांप-से रहे थे, मानो अभी हाल ही में उनका चुम्बन किया गया हो। उसके भरे हुऐ कपोल उसके स्वास्थ्य, रक्त की उष्णता, विकसित यौवन और स्त्रियोचित शक्ति की शोभा से कान्तिमान मालूम पड़ रहे थे। उसका ललाट ऐसा जान पड़ रहा था, मानो कभी उसने चिन्ता ही न की हो और यह अच्छा ही हुआ। इस स्त्री का चित्र उसकी इटालियन पोशाक में चित्रित किया गया। चित्रकार ने उसके बालों पर एक अंगूरलता खींच दी थी। उसके सिर के बाल बिलकुल काले, चमकीले तथा उज्जवल थे--प्रकाश से जगमगा रहे थे। उसका यह अलंकार उसके मुखमंडल के भाव से आश्चर्यजनक मेल खाता था। क्या तुम बता सकते हो कि उसका चेहरा देखकर मुझे किसकी याद आ गई ? वही मेरी मनों लस्को, जिसका चित्र काले रंग के चौखटों में मेरे यहां टंगा हुआ है। उस चित्र को देखने से मुझे सबसे बढ़कर

आश्चर्यजनक बात जो मालूम हुई, वह यह थी कि यद्यपि वेरा के चेहरे की रूपरेखाएं सम्पूर्णतया भिन्न थीं, तथापि कभी-कभी उस मुस्कराहट और चितवन की झलक उसमें दीख पड़ती थी।

हां, तो मैं फिर तुमसे कहता हूं कि वेरा में जो शक्तियां छिपी हुई हैं, उन्हें न तो खुद वह ही जानती है और न कोई दूसरा।

इसी प्रसंग में मैं तुमसे यह कहे देता हूं कि श्रीमती येल्त्सोवा ने अपनी कन्या के विवाह के पूर्व अपनी सारी जिन्दगी के बारे में, अपनी माता की मौत के बारे में तथा और इसी तरह की दूसरी बातें, शिक्षाप्रद उद्देश्य से, उसे बता दी थीं। वेरा ने अपने दादा रहस्यपूर्ण लदानोव के विषय में जो कुछ सुना था, उसका उसपर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। शायद इसी से वह भूत-प्रेतादि में विश्वास रखती है। कैसी विचित्र बात है ! वह स्वयं इतनी पवित्र और उज्जवल होने पर भी प्रत्येक काली और अन्धकार में लिपटी वस्तु को देखकर डर जाती है और उसमें विश्वास करती है।

बस, आज इतना ही, किन्तु मैं यह सब लिख क्यों रहा हूं? लेकिन जब लिखा ही गया है तो तुम्हारे पास इसे भेजना ही ठीक होगा।

तुम्हारा

प० ब०

सातवीं चिट्ठी

म...ओए ग्राम,
२२ अगस्त, १८५०

प्रिय मित्र,

अपना पिछला पत्र लिखने के दस दिन बाद आज मैं फिर यह चिट्ठी लिखने बैठा हूं। ओ मेरे प्यारे दोस्त, अब अधिक समय तक मैं अपनी भावनाएं तुमसे छिपाकर नहीं रख सकता।...मैं कितना दुःखी हूं ! मैं उसे कितना प्रेम करता हूं ! तुम क्या सोच सकते हो कि इस घातक शब्द को लिखते हुए मैं कितनी कटुता का अनुभव कर रहा हूं ! शब्दमात्र से कंपकंपी आ जाती है। मैं बालक नहीं हूं और अब युवक भी नहीं रहा। मैं अब उस अवस्था में भी नहीं हूं, जबकि दूसरे को धोखा देना असम्भव-सा होता है, किन्तु अपने-आपको धोखा देने में कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। मैं सब-कुछ जानता हूं और साफ-साफ देखता हूं। मैं यह जानता हूं कि मेरी अवस्था इस समय लगभग चालीस वर्ष की है। वेरा दूसरे की स्त्री है। वह अपने पति को प्यार करती है। मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूं कि जिस दुःखमयी भावना ने मेरे ऊपर अपना अधिकार कर लिया है, उसका परिणाम गुप्त वेदना और जीवनशक्ति के सर्वनाश के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। मैं यह सबकुछ जानता हूं, मैं किसी बात की आशा नहीं करता और न किसी वस्तु की अभिलाषा रखता हूं। इन सब बातों के बावजूद मेरी हालत खराब ही है। अबसे एक महीने पहले से ही मैं यह अनुभव करने लगा था कि मेरे लिए वेरा में जो आकर्षण है, वह दिनों-दिन बढ़ता ही

जा रहा है। इससे कुछ-कुछ मुझे कष्ट भी मालूम हुआ, आनन्द भी। मैं स्वप्न में भी इस बात की कल्पना नहीं कर सकता था कि मेरे जीवन में प्रत्येक वस्तु की इस प्रकार पुनरावृत्ति होगी और--जैसाकि तुम समझ सकते हो--इन सब वस्तुओं की पुनरावृत्ति की उसी तरह आशा नहीं की जा सकती थी, जिस तरह यौवन के पुनरागमन की। मैं क्या कह रहा हूं ? मैंने इस बार जैसा कभी प्रेम नहीं किया था। नहीं कभी नहीं। मनों लेसको और फ्रेतिल्योना की तरह की स्त्रियां मुझे बहुत ही पसन्द थीं। इन मूर्त्तियों को सहज ही में भंग किया जा सकता है, किन्तु अब मुझे इस बात का पता लगा है कि किसी स्त्री से प्रेम करना किसे कहते हैं। इस विषय की चर्चा करने में मुझे लज्जा मालूम पड़ती है, किन्तु बात ऐसी ही है। मैं लज्जित हूं। किसी भी दृष्टि से देखो, प्रेम स्वार्थमय है। मेरी जैसी आयु में स्वार्थी होना उचित भी नहीं है। सैंतीस वर्ष की अवस्था में किसी को स्वार्थमय जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए। जीवन का कोई उद्देश्य होना चाहिए। संसार में अपने लिए एक कर्तव्य निश्चित कर लेना चाहिए। मैंने अपने जीवन का एक लक्ष्य निश्चित करके कार्य आरम्भ भी कर दिया था, पर सारा मामला गड़बड़ हो गया, मानो आंधी ने आकर सारी चीजें तितर-बितर कर दी हों। अब मैं उन बातों का, जो मैंने तुम्हें अपने प्रथम पत्र में लिखी थीं, मतलब समझ रहा हूं। अब यह बात मेरी बुद्धि में आ रही है कि किस बात के अनुभव से मैं वंचित रह गया। कितना अचानक यह आघात मेरे ऊपर पड़ा है ! मैं हतबुद्धि-सा होकर भविष्य की ओर देख रहा हूं। मेरी आंखों के सामने एक काला पर्दा पड़ा हुआ है। मेरा हृदय भय और शिथिलता से परिपूर्ण है। मैं अपने

को नियन्त्रित कर सकता हूं। मैं सिर्फ दूसरों के सामने ही नहीं, बल्कि एकान्त में भी बाहर से शान्त दीख पड़ता हूं। मैं एक बालक की भांति ऊल-जलूल नहीं बक सकता, किन्तु मेरे हृदय में प्रेम-कीट का प्रवेश हो गया है और वह कीड़ा हृदय को अहर्निश काट-काटकर खा रहा है। मालूम नहीं, इसका अन्त किस तरह होगा। अबतक तो यह हालत रही थी कि उससे जुदा होते ही मुझे बेचैनी और कष्ट होता था और उससे मिलते ही तुरन्त शान्ति प्राप्त हो जाती थी, किन्तु अब तो उसके साथ रहने पर भी मुझे चैन नहीं मिलता और खासकर यही बात मेरे लिए भय का कारण है। ओ मेरे मित्र, अपने आंसुओं पर लज्जित होना और उन्हें छिपाना कितना कठिन है ! रोना तो सिर्फ युवकों के लिए है, युवकों को ही आंसू शोभा देते हैं।....

मैं इस पत्र को फिर नहीं पढ़ सकता। यह दिल की आह की तरह कलेजा चीरकर अनिच्छापूर्वक लिखा गया है। मैं कुछ अधिक इसमें जोड़ नहीं सकता और कुछ कह नहीं सकता।... मुझे समय दो, मैं खुद होश में आ जाऊंगा और फिर अपनी खोई हुई चेतना प्राप्त कर लूंगा। उस समय मैं तुम्हारे साथ एक पुरुष की भांति बातें करूंगा, किन्तु इस समय तो मैं एक बात के लिए तरस रहा हूं, वह यह कि तुम्हारी गोदी में अपना सिर रख दूं।

हे मेफिस्तोफेल, तू भी मदद नहीं करता है ! मैं एक निश्चित उद्देश्य से रुक गया था। अपने बारे में निश्चित उद्देश्य से व्यंग्य-भावनाएं रखता था। अपने मन में अपने को विश्वास दिलाता था कि डेढ वर्ष के बाद मेरे ये पश्चात्ताप और शोकोद्गार मुझे

कितने उपहासास्पद और अप्रिय मालूम पड़ेंगे ! ...नहीं, मेफिस्तोफेल की कोई ताकत नहीं रही, और उसके दांत कुन्द हो गये...अच्छा नमस्कार।

तुम्हारा
प० ब०

आठवीं चिट्ठी

म... ओए ग्राम,
८ सितम्बर, १८५०

प्रिय सेम्योन निकोलाएविच,

मेरे पिछले पत्र का तुम्हारे दिल पर बहुत अधिक असर पड़ा है। तुम तो जानते ही हो कि अपनी अनुभूतियों को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने की सदा से मेरी आदत रही है। अज्ञात रूप में ही ऐसा मुझसे हो जाया करता है। यह एक प्रकार की स्त्रियों की-सी प्रकृति है। कुछ समय के बाद आप-ही-आप चली जायगी, किन्तु मैं खेद के साथ स्वीकार करता हूं कि अबतक मैं अपनी इस कमजोरी को ठीक नहीं कर पाया, इसलिए अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। वेरा का मुझपर जो प्रभाव पड़ा है, उसे मैं अस्वीकार नहीं कर रहा हूं, परन्तु मैं फिर कहता हूं कि इन सब बातों में कोई विलक्षणता नहीं है। तुम्हारे लिए यहां आना, जैसाकि तुम लिख रहे हो, अभी सर्वथा अप्रासंगिक--बिलकुल अनावश्यक--होगा। छोटी-सी बात के लिए एक हजार मील की यात्रा करना उन्माद है। तुम्हारे स्नेह के इस नये प्रमाण के लिए मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतज्ञ हूं और विश्वास रखो कि मैं इसे कभी भूलूंगा नहीं। तुम्हारा यहां आना इसलिए भी अप्रासंगिक होगा, क्योंकि मैं स्वयं ही शीघ्र पेतेर्बुर्ग आना चाहता हूं। तुम्हारे साथ तुम्हारे सोफे पर बैठकर मुझे बहुत-कुछ कहना होगा, परन्तु इस समय मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। कहने की जरूरत ही क्या है ? इस समय तो मैं बिलकुल ऊटपटांग बातें कहूंगा और सबकुछ गड़बड़ा दूंगा। यहां से रवाना होने के पहले मैं तुम्हें

फिर लिखूंगा। अभी कुछ समय के लिए विदा लेता हूं। खुश रहो और स्वस्थ रहो और अपने प्रेमी मित्र के भाग्य के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता न करो।

तुम्हारा

प० ब०

नवीं चिट्ठी

प...ओए ग्राम,
१० मार्च, १८५३

बहुत दिनों से मैंने तुम्हारे पत्र का उत्तर नहीं दिया। इतने दिनों से मैं बराबर इस सम्बन्ध में सोचता रहा हूं। मैं इस बात का अनुभव करता था कि तुमने केवल कौतूहलवश नहीं, बल्कि वास्तविक मित्रता से प्रेरित होकर ही मुझे सलाह दी थी, किन्तु तो भी मैं तुम्हारी सलाह के अनुसार चलने अथवा तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करने के सम्बन्ध में आगा-पीछा करता रहा। आखिर मैंने अपने मन में संकल्प कर लिया है कि अब मैं तुमसे सारी बातें कह दूंगा। दिल खोलकर सारी बातें बताने से मेरे मन को चैन मिलेगा-जैसा कि तुम समझते हो--यह मैं नहीं जानता, किन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है कि जिस कारण से मेरे जीवन की गति में सदा के लिए परिवर्तन हो गया है, उस कारण को तुमसे छिपाये रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। सचमुच, मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि यह मेरी भूल होगी, अपराध होगा--जबरदस्त अपराध होगा--उस प्रिय प्राणी के प्रति, जो निरन्तर मेरे ध्यान में रहता है, यदि मैं अपने शोकयुक्त रहस्य को उस व्यक्ति से, जिससे मेरा अब भी प्रेम है, प्रकट नहीं करूं। संसार में शायद एकमात्र तुम्हीं ऐसे व्यक्ति हो, जो वेरा को स्मरण करते हो। ऐसी हालत में यदि तुम उसके सम्बन्ध में हलकेपन के साथ मिथ्या विचार करो तो यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुम्हें सब-कुछ ज्ञात हो जायगा। आह! सारी बातें दो शब्दों में ही तुमसे कही जा सकती हैं। हम

दोनों के बीच जो कुछ हुआ, वह एक क्षण के अन्दर ही बिजली जैसा प्रकाशित हो उठा और बिजली गिरने के समान ही मृत्यु और सर्वनाश अपने पीछे छोड़ता गया।

दो बरस से अधिक हो गये। वह चली गई। उसके जाने के बाद से मैंने इस सुदूर स्थान को अपना निवास बना लिया है और इस स्थान को अपने अन्तिम दिनों तक छोड़ूंगा भी नहीं। उस समय की सारी की सारी घटनाएं अबतक मेरे स्मृति-पटल पर स्पष्ट रूप में अंकित हैं। मेरे घाव अबतक हरे ही बने हैं और मेरा शोक भी पहले जैसा ही तीव्र बना हुआ है।

मैं तुमसे कोई शिकायत नहीं करूंगा। शिकायत करना भूले हुए शोक को फिर ताज़ा करना है, जिससे शोक भले ही कुछ कम हो, किन्तु मेरे दिल को तो चैन नहीं मिलता। अब मैं अपनी राम-कहानी शुरू करूंगा।

क्या तुम्हें मेरा वह पत्र याद है, जिसमें मैंने तुम्हारी आशंकाओं को मिटाने का प्रयत्न किया था और तुम्हें पेतेर्बुर्ग आने से मना किया था ? तुमने उस पत्र के कृत्रिम हलकेपन के भाव पर सन्देह प्रकट किया था। तुमने हम लोगों के शीघ्र मिलन पर विश्वास नहीं किया और तुम्हारा ऐसा करना ठीक ही था। तुम्हें पत्र लिखने के एक दिन पूर्व मुझे मालूम हुआ कि वेरा मुझे प्यार करती है।

इन शब्दों को लिखते हुए मैं इस बात का अनुभव कर रहा हूं कि मेरे लिए अपनी रामकहानी को शुरू से आखिर तक बयान करना कितना कठिन है। उसकी मृत्यु का निरन्तर स्मरण मुझे दूनी शक्ति के साथ उत्पीड़ित करेगा और वे स्मृतियां मुझे जलाकर

खाक कर डालेंगी, परन्तु मैं अपने-आपको काबू में रखने की कोशिश करूंगा और या तो लेखनी को उठाकर अलग रख दूंगा अथवा आवश्यकता से अधिक एक शब्द भी नहीं लिखूंगा।

वेरा मुझे प्यार करती है, यह बात मुझे इस प्रकार मालूम हुई। सबसे पहले मैं तुम्से यह कहूंगा (और तुम मेरे कथन पर विश्वास रखो) कि उस दिन तक मुझे इस सम्बन्ध में बिलकुल ही शक नहीं था। यह सच है कि वह कभी-कभी शोकाकुल हो जाया करती थी, यद्यपि इससे पहले उसे ऐसा होते कभी देखा नहीं गया था, पर उस समय तक मैं नहीं जानता था कि उसमें यह परिवर्तन कैसे हो गया है। आखिर एक दिन--सात सितम्बर को--जो दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा--एक घटना इस प्रकार घटी। तुम जानते हो कि मैं उसे कितना प्यार करता था और उसके लिए कितना दु:खी था। एक व्याकुल प्राणी की तरह मैं इधर-उधर मारा-मारा फिरता था, और मुझे कहीं चैन नहीं मिलता था। मैंने घर पर ही रहने की कोशिश की, परन्तु मैं अपनेको काबू में नहीं रख सका और उसके पास चला गया। मैंने उसे अपनी बैठक के कमरे में अकेला पाया। प्रिइमकोव घर पर नहीं था। वह बाहर शिकार खेलने चला गया था। जब मैं वेरा के पास पहुंचा तो वह टकटकी लगाकर मेरी ओर देखने लगी और उसने मेरे अभिवादन का कुछ उत्तर नहीं दिया। वह खिड़की के पास बैठी हुई थी। उसके घुटनों पर एक पुस्तक रखी हुई थी, जिसे मैंने फौरन पहचान लिया। वह मेरी पुस्तक 'फाउस्त' थी। उसके चेहरे से थकावट के निशान दिखाई पड़ रहे थे। मैं उसके पास ही बैठ गया। वेरा ने

मुझसे 'फाउस्त' और 'ग्रेचन' का वह दृश्य जोर से पढ़ने के लिए कहा, जहां वह उससे पूछती है कि क्या वह ईश्वर में विश्वास करता है।

मैंने पुस्तक ले ली और पढ़ना शुरू कर दिया। पढ़ना समाप्त हो जाने पर मैंने वेरा की तरफ देखा। वह अपने मस्तक को आरामकुर्सी की पीठ के बल रखे हुए और अपनी दोनों बांहों को छाती पर फैलाए पहले के समान ही मेरी ओर टकटकी बांधे देख रही थी।

मैं नहीं कह सकता कि क्यों एकाएक मेरा दिल धड़कने लगा। "आपने मुझे क्या कर ड़ाला ?" वेरा ने धीमे स्वर में कहा।

"क्या कहा ?" मैं घबराकर बोल उठा।

उसने फिर वही बात दुहरा ड़ाली, हां, आपने मुझे क्या कर डाला ?"

मैंने कहना शुरू किया, "आपके कहने का मतलब यही है न कि मैंने आपको इस प्रकार की पुस्तकों को पढ़ने के लिए क्यों प्रेरित किया ?"

वह बिना कुछ बोले ही उठ खड़ी हई और कमरे से बाहर चली गई। मैं उसके पीछे देखता रहा। दरवाजे के पास जाकर वह ठहर गई और मेरी तरफ घूमकर कहने लगी, "मैं आपसे प्रेम करती हूं। आपने मुझे जो कुछ कर डाला है, वह यही है।"

मेरे सिर में खून दौड़ गया।

"मैं आपसे प्रेम करती हूं--आपपर जान देती हूं।" वेरा ने

दुहराते हुए कहा।

फिर वह अपने पीछे के किवाड़ को बन्द करती हुई बाहर चली गई। इसके बाद मुझपर क्या बीती, उसे वर्णन करने का मैं प्रयत्न करूंगा। मुझे स्मरण है कि मैं बाहर बगीचे में चला गया और एक झाड़ी के अन्दर जाकर एक पेड़ के सहारे खड़ा हो गया। उस हालत में कितनी देर तक वहां खड़ा रहा, यह मैं नहीं कह सकता। मुझे बेहोशी जैसा सुख मालूम पड़ा। हां, एक प्रकार के आनन्द की भावना मेरे हृदय में उत्पन्न हुई, जिसका झोंका कभी-कभी आ जाया करता था। मैं उसका यहांपर वर्णन नहीं कर सकता। इस प्रकार की अचेतनावस्था में मैं पड़ा हुआ था कि इतने में प्रिइमकोव की आवाज ने मुझे सचेत कर दिया। घरवालों ने प्रिइमकोव के पास मेरे आने की खबर भेजी थी। वह शिकार से लौटकर घर आ गया था और मेरी तलाश में था। वह मुझे बगीचे में अकेले ही बिना टोपी पहने हुए देखकर चकित हो गया और घर के भीतर लिवा ले गया।

उसने कहा, "मेरी पत्नी बैठक में है। चलो, हम सब उसके पास चलें।"

तुम उस समय की भावनाओं की कल्पना कर सकते हो, जबकि मैंने बैठक के दरवाजे से होकर भीतर जाने के लिए आगे कदम बढ़ाया। वेरा मकान के एक कोने में कसीदा काढ़ने के फ्रेम के पास बैठी हुई थी। मैंने चुपके-से उसकी ओर एक बार देखा, फिर बहुत देर तक मैंने अपनी आंखें ऊपर नहीं उठाईं। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह बिलकुल शान्त थी। उसके कथन में

या स्वर में किसी प्रकार का विक्षोभ नहीं जान पड़ता था। आखिर मैंने साहस करके उसकी ओर देखा। हम दोनों की आंखें चार हुईं। वह कुछ लज्जित-सी हो गई और अपने तिरपाल की ओर झुक गई। मैं उसे ध्यानपूर्वक देखने लगा। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो वह परेशान थी। कभी-कभी उसके होठों पर एक निरानन्द मुसकराहट खेल जाती थी।

प्रिइमकोव बाहर चला गया। वेरा ने एकाएक अपना सिर ऊपर उठाया और ऊंची आवाज में मुझसे पूछा, "बोलिये, अब आपका क्या इरादा है ?"

मैं एकबारगी चकित हो गया और शीघ्रतापूर्वक दबी जबान में उत्तर दिया, "मैं एक ईमानदार मनुष्य की तरह अपना कर्तव्य पालन करना चाहता हूं--यहां से चले जाना चाहता हूं।"

मैंने फिर कहा,"वेरा निकोलाएव्ना, मैं आपको प्यारा हूं, यह बात तो शायद आप बहुत पहले से ही जान गई होंगी।"

वह फिर अपने तिरपाल की ओर झुक गई और कुछ सोचने सी लगी।

उसने कहा, "मुझे आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं। आज शाम की चाय के बाद हमारे छोटे घर में आना--वही घर, जिसे आप जानते हैं और जहां आपने 'फाउस्त' पढ़ी थी।"

इस बात को उसने इतने स्पष्ट रूप में कहा कि मैं आजतक यह समझ नहीं सका हूं कि प्रिइमकोव ने, जिसने उसी क्षण उस कमरे में प्रवेश किया था, क्यों कर उसकी बातों को कुछ भी नहीं

सुना। धीरे-धीरे बड़ी मुश्किल से दिन कटा। वेरा कभी-कभी अपने चारों ओर देखने लगती थी और उस समय उसके चेहरे का भाव ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह अपने-आपसे पूछ रही हो कि वह स्वप्न तो नहीं देख रही है, किन्तु इसके साथ-साथ उसके चेहरे से दृढ़ संकल्प का भाव भी टपकता था। इधर मेरी यह दशा हो रही थी कि मैं अबतक अपने-आपको सम्भाल नहीं सका था।

वेरा मुझे प्यार करती है।'--ये शब्द मेरे मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काट रहे थे, किन्तु मैं उन शब्दों को समझ नहीं सका। मैं न तो खुद अपनेको ही समझ सका और न वेरा को ही। मैं इस प्रकार के अप्रत्याशित परम सुख पर विश्वास भी नहीं कर सका। बड़े प्रयत्न के साथ मैंने अपने भूतकाल का स्मरण किया और मैं भी स्वप्नशील की तरह देखने और बातें करने लगा।

शाम को चाय-पान के बाद जब मैं यह सोच रहा था कि किस प्रकार चुपके से सबकी निगाह बचाकर उस घर से बाहर निकल जाऊं, वेरा ने एकाएक अपनी इच्छा से मुझे यह जताया कि वह टहलना चाहती है और उसने अपने साथ चलने के लिए मुझे कहा। मैं उठा, अपनी टोपी ले ली और उसके पीछे हो लिया। मुझे कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। मैं मुश्किल से सांस ले सकता था। मैं यह प्रतीक्षा कर रहा था कि देखें, पहली बात वह क्या कहती है और क्या कैफियत पेश करती है, परन्तु वह कुछ न बोली। मौनावस्था में ही हम दोनों उस ग्रीष्म-गृह के पास पहुंचे और उसी दशा में चुपचाप उसमें प्रवेश किया, इसके बाद--मैं आजतक नहीं जान सका हूं और अबतक नहीं समझ सका हूं कि यह घटना किस

प्रकार घटी--हमने अचानक अपने को एक-दूसरे के भुजपाश में पाया। किसी अदृश्य शक्ति ने मुझे खींचकर उसके पास और उसे खींचकर मेरे पास पहुंचा दिया था। सन्ध्याकाल के ढलते हुए सूर्य के प्रकाश में उसका चेहरा--जिसके घुंघराले बाल पीठ की ओर पड़े हुए थे--आत्म-समर्पण और करुणा की मुस्कराहट से क्षण-भर के लिए प्रकाशित हो उठा । हम दोनों चुम्बन में संयुक्त हो गये।

वही चुम्बन अन्तिम था !

वेरा सहसा मेरे भुजपाश से अलग हो गई और अपनी विस्तृत खुली हुई आंखों से भय का भाव व्यक्त करती हुई पीछे की ओर खिसक गई।

इसके बाद फिर वह कांपते हुए स्वर में बोली, "अरे, पीछे की ओर तो देखिये क्या आपको कुछ दिखाई नहीं पड़ता ?"

मैंने फौरन पीछे की ओर मुड़कर देखा।

"मुझे तो कुछ नहीं दिखाई देता । क्यों, क्या आपको कोई चीज़ दिखाई दे रही है ?"

"अभी तो नहीं, पर इससे पहले मुझे दीखी थी।"

इसके बाद वह जोर-जोर से सांसें लेने लगी।

"आपने किसे देखा था ? क्या देखा था ?"

"अपनी मां को !" उसने धीरे-से कहा और उसका सारा शरीर कांपने लगा।

मैं भी इस तरह कांपने लगा, जैसे मुझे सर्दी लग गई हो।

फिर मुझे एकाएक लज्जा मालूम हुई, मानो मैंने कोई अपराध किया हो, और क्या सचमुच मैंने उस क्षण अपराध नहीं किया था?

मैंने कहा, "यह सब व्यर्थ की बातें हैं। आपके कहने का मतलब क्या है ? मुझसे कहिये तो।"

"नहीं, ईश्वर के लिए ऐसा मत कहिये।" अपने माथे को जोर-से पकड़ते हुए उसने कहा, "यह पागलपन है, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं रही।...मेरे लिए यह मरने जैसा है।...मैं इसके साथ अब यों खिलवाड़ नहीं कर सकती। यह मौत है।...अच्छा, अब विदा।"

मैंने अपने हाथ उसकी ओर बढ़ा दिये।

मैं आप-ही-आप जोर से चिल्ला उठा, "ठहरिये, आपको ईश्वर की कसम है। क्षण-भर ठहरिये।"

मैं नहीं जानता था कि मैं क्या कह रहा था और उस समय मैं मुश्किल से खड़ा रह सकता था।--"ईश्वर के लिए...यह बड़ी ही निष्ठुरता है।"

उसने अपनी निगाह फिर मेरी ओर की।

"कल, शाम को", उसने कहा, "मैं आपसे प्रार्थना करती हूं, आज नहीं, कल चले जाइये। कल शाम को झील के पास बगीचे के फाटक पर आइये। मैं वहां मौजूद रहूंगी, मैं जरूर आऊंगी। मैं आपसे कसम खाकर कहती हूं, मैं जरूर आऊंगी।" उसने आवेश के साथ कहा और उसकी आंखें चमक उठीं, "चाहे कोई मुझे भले ही रोके, मैं सौगन्ध खाती हूं, मैं तुमसे सब बातें कहूंगी। आजभर के लिए मुझे जाने दो।"

मेरे मुंह से एक शब्द भी न निकल पाया था कि उससे पहले ही वेरा वहां से चल दी।

मैं हतबुद्धि-सा होकर जहां का तहां खड़ा रह गया। मेरा सिर चकरा रहा था। मेरे सारे शरीर में आनन्दोन्माद की जो लहर चल रही थी, उसके अन्दर भय का संचार होने लगा, मानो वह धुंधला,नम कमरा, जिसमें मैं खड़ा था, अपनी नीची झुकी हुई छत और शून्य दीवारों के साथ मेरे ऊपर गिरा पड़ता हो।

मैं बाहर चला गया और निराश कदमों से चलता हुआ घर की तरफ रवाना हुआ। वेरा चबूतरे पर मेरी राह देख रही थी। ज्योंही मैं उसके पास पहुंचा, वह घर के अन्दर घुस गई और फौरन अपने कमरे में आराम करने चली गई।

मैं भी वहां से चला आया।

वह रात कैसे बीती और दूसरे दिन शाम तक का समय मैंने किस तरह बिताया, यह मैं तुम्हें बता नहीं सकता। मुझे सिर्फ इतना ही याद है कि मैं अपने चेहरे को अपने हाथों से छिपाये हुए पड़ा रहा और चुम्बन के पूर्व उसकी जैसी मुस्कान देखी थी, उसे याद करता रहा। मैं धीरे-से बोल उठा, "आखिर उसने..."

मुझे श्रीमती येल्त्सोवा के वे शब्द भी याद हो आये, जो वेरा ने मेरे सामने दुहराये थे। उसकी माता ने एक बार उससे कहा था, "तुम बर्फ की तरह हो। जबतक तुम पिघलती नहीं, तबतक तो तुम पत्थर की तरह कठोर रहती हो, लेकिन तुम्हारे पिघलते ही फिर तुममें कुछ भी बाकी नहीं रह जाता।"

एक और बात मुझे याद आ गई। वेरा और मैंने एक बार प्रतिभा, योग्यता आदि के विषय में बातचीत की थी। उसने मुझसे कहा था,"एक ही बात है, जो मैं कर सकती हूं, यानी आखिरी दम तक मौन धारण किये रहना।"

उस समय मैं उसके इस कथन का अभिप्राय कुछ भी नहीं समझा था।

"पर उसके भयभीत होने का मतलब क्या था ?"

मैं आश्चर्य करने लगा। क्या सचमुच वह श्रीमती येल्त्सोवा को देख सकी होगी ? या यह निरी कल्पना थी ? मैंने विचार किया और फिर आशा के भावावेश में अपने-आपको छोड़ दिया। उसी दिन मैंने उन विचारों के बीच में तुम्हें वह छलपूर्ण चिट्ठी लिखी थी, और आज तो इस बात को याद करके मेरे दिल को चोट पहुंचती है।

शाम का समय था। सूर्य अभी डूबा नहीं था। मैं झील के किनारे एक लम्बी झाड़ी में बगीचे के फाटक से लगभग पचास कदम की दूरी पर खड़ा था। घर से पैदल ही चलकर आया था। मुझे यह स्वीकार करते हुए लज्जा मालूम हो रही है कि मेरा हृदय उस समय एक प्रकार के भय से--अत्यन्त कायरतापूर्ण भय से--भरा हुआ था और मैं क्षण-क्षण पर चौंक उठता था, किन्तु मेरे हृदय के अन्दर पश्चात्ताप की भावना नहीं थी। शाखाओं के बीच छिपा हुआ मैं लगातार फाटक की तरफ देख रहा था। सूर्य अस्त हो चुका था। सन्ध्या हो गई थी। आकाश में तारे निकल आये थे। आसमान का रंग काला हो गया था, पर उस समय तक वहां कोई

नहीं आया। मुझे ज्वर चढ़ आया। रात हो गई। मैं अब अधिक बर्दाश्त नहीं कर सका, और सावधानी के साथ झाड़ी के बाहर आकर चुपके-से फाटक तक गया। बगीचे में बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने धीमे स्वर में वेरा को दो-तीन बार पुकारा। मेरी पुकार का कोई जवाब नहीं मिला। आध घंटा और बीत गया, एक घंटा बीत गया। बिलकुल अंधेरा फैल गया। मैं इन्तजार करते-करते थक गया। आखिर मैंने दरवाजे को अपनी ओर खींचकर खोल दिया चोर की तरह चुपके-से घर की ओर कदम बढ़ाया। कुछ दूर चलकर फिर मैं लीपा के एक पेड़ के नीचे ठहर गया।

उस समय घर की प्राय: सभी खिड़कियों से रोशनी आ रही थी। लोग घर में इधर-उधर फिर रहे थे। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। तारों के धुंधले प्रकाश में मैंने अपनी घड़ी देखी तो मालूम हुआ, साढ़े ग्यारह बज चुके हैं। अचानक मुझे घर के पास एक आवाज सुनाई दी और उस घर के आंगन से एक गाड़ी बाहर निकली।

मैंने समझा, शायद मिलने के लिए कोई मेहमान आये होंगे। आखिर वेरा के दर्शन से सर्वथा निराश होकर मैंने बगीचे से बाहर निकलने का रास्ता पकड़ा और लम्बे डग रखता हुआ घर की तरफ चल दिया। उस दिन सितम्बर महीने की अंधेरी रात थी, पर गर्मी मालूम हो रही थी। हवा एकदम बन्द थी। मेरे हृदय पर क्रोध की भावना की अपेक्षा उदासी की भावना ने अधिक अधिकार जमा लिया था, किन्तु यह भावना भी क्रमश: कम हो रही थी। तेजी से चलने के कारण मैं थक तो गया था, पर रात्रि की निस्तब्धता के कारण शान्ति का अनुभव करता हुआ बिना किसी प्रयास के आनन्द से घर

पहुंच गया। मैं अपने कमरे में गया, अपने नौकर तिमोफेई को छुट्टी दे दी और बिना कपड़े उतारे ही बिछौने पर लेटकर अपने उस जाग्रत स्वप्न में लीन हो गया।

आरम्भ में तो मुझे अपने दिवा-स्वप्न मधुर प्रतीत हुए, परन्तु शीघ्र ही मैंने अपने अन्दर एक अद्भुत परिवर्तन देखा। मुझे एक प्रकार की गुप्त हृदयवेधक चिन्ता का--एक प्रकार की गम्भीर आन्तरिक बेचैनी का--अनुभव होने लगा। मैं समझ नहीं सका कि इस चिन्ता--इस बैचैनी--का कारण क्या है, परन्तु मुझे दु:ख और उदासी का अनुभव होने लगा, मानो किसी आनेवाली विपत्ति से मैं डर गया हूं अथवा मेरा कोई प्रियपात्र उस क्षण कष्ट-पीड़ित होकर मुझे सहायता के लिए पुकार रहा है। मेरे सोने के कमरे में मेज पर एक मोमबत्ती अपने धीमे किन्तु निश्चल प्रकाश में जल रही थी और घड़ी का पेन्डुलम टिक-टिक शब्द करता हुआ झूल रहा था। मैं अपने हाथ पर सिर रखे हुए उस सुनसान कमरे की दीवार पर टकटकी बांधे देख रहा था। मुझे वेरा का खयाल हो आया और मेरा कलेजा कांप उठा। अबतक जिन सब बातों से मैं इतना प्रसन्न हो रहा था, वे ही मुझे दु:ख और सर्वनाश के रूप में प्रतीत होने लगीं। मेरे हृदय में भय की भावना क्रमश: बढ़ती गई। मैं अब अधिक समय तक वहां लेटा नहीं रह सका।

फिर सहसा ऐसा लगा, मानो मुझे कोई आर्त्तस्वर में पुकार रहा हो। मैंने सिर उठाया। मुझे सिर से पांव तक कंपकपी आ गई मैंने भूल नहीं की थी। दूर से करुणापूर्ण स्वर में रोने की आवाज उस कमरे की खिड़कियों से गूंजती हुई आ रही थी। मैं

डर गया और बिछौने से कूदकर अलग खड़ा हो गया। मैंने खिड़की खोली। मुझे किसीके विलपने की आवाज साफ-साफ सुनाई पड़ी और ऐसा मालूम हुआ मानो वह आवाज मेरे आसपास में ही मंडरा रही हो। भयभीत होकर मैंने उस आवाज की अन्तिम प्रतिध्वनि को सुना। ऐसा जान पड़ा, जैसे, कुछ दूर पर कोई मारा जा रहा हो और वह बेचारा दया के लिए प्रार्थना कर रहा हो। कराहने की वह आवाज जंगल में किसी उल्लू की थी या किसी और जानवर की, इसपर मैंने उस समय कोई विचार नहीं किया, लेकिन जिस तरह मज़ेपा ने कोचुबेय की पुकार का उत्तर दिया, उसी तरह मैं भी उस अपशकुनसूचक शब्द के प्रत्युत्तर में बोलने लगा।

"वेरा-वेरा ?" मैं जोर से चिल्ला उठा, "क्या तुम्हीं मुझे बुला रही हो ?" मेरा नौकर तिमोफेई सोने से चौंककर अलसाता-ऊंघता हुआ वहां आ पहुंचा।

मुझे होश हुआ और तब मैंने एक गिलास पानी पीया। इसके बाद मैं दूसरे कमरे में चला गया, पर मुझे नींद नहीं आई। मेरा कलेजा जल्दी-जल्दी नहीं, किन्तु दु:खद रूप में धक-धक कर रहा था। फिर मैं सुख-स्वप्न देखने में अपने को तन्मय नहीं कर सका और मुझे सुख की कल्पना करने का साहस ही नहीं हुआ।

दूसरे दिन रात के भोजन के पहले मैं प्रिइमकोव के घर पर गया। प्रिइमकोव का चेहरा चिंता के मारे उतरा हुआ दीख पड़ता था। उसने कहा, "मेरी पत्नी बीमार है। वह खाट पर लेटी हुई है। मैंने डाक्टर को बुला भेजा है।"

"उन्हें क्या हो गया है ?"

"यह नहीं बता सकता। कल शाम को वह बगीचे में गई थी, और वहां से जब वह एकाएक लौटी तो बिलकुल भयभीत और आपे से बाहर हो रही थी। नौकरानी मेरे पास आई और सूचना दी। तब मैं अन्दर गया और अपनी पत्नी से पूछा कि उसे क्या तकलीफ है। उसने मेरे सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। उसी समय से वह उसी अवस्था में पड़ी हुई है। रात से उसे बेहोशी शुरू हो गई और उसी हालत में न मालूम, वह क्या-क्या बकती रही। तुम्हारा नाम भी उसने लिया था। नौकरानी ने मुझसे एक विलक्षण बात यह कही है कि वेरा की माता बगीचे में उसके सामने प्रकट हुई थी, और उसे देखकर वेरा को ऐसा खयाल हुआ, मानो वह अपनी बांहें फैलाये हुए उससे मिलने आ रही हो।"

तुम कल्पना कर सकते हो कि इन शब्दों को सुनकर मेरे मन में क्या भाव उत्पन्न हुए होंगे !

फिर प्रिइमकोव ने कहा, "इसमें सन्देह नहीं है कि ये सब व्यर्थ की बातें हैं, हालांकि मैं इतना ज़रूर मान लूंगा कि मेरी पत्नी के साथ इस तरह की विलक्षण घटनाएं घटती रही हैं।"

"आप कहते हैं न कि वेरा निकोलएव्ना बहुत अस्वस्थ हैं ?"

"हां, रात में तो उसकी हालत बहुत ही खराब थी और अब भी वह अंटशंट बक रही है।"

"डाक्टर ने क्या कहा ?"

"डाक्टर ने कहा कि अभी बीमारी निश्चित नहीं हुई है..."

१२ मार्च

प्रिय मित्र,

जिस सुर में मैंने पत्र लिखना शुरू किया था, उसी सुर में अब मैं आगे नहीं लिख सकता। इसमें मुझे बहुत प्रयास करना पड़ता है और मेरे कलेजे का घाव अत्यन्त निष्ठुरता के साथ फिर ताजा हो उठता है। उसकी बीमारी डाक्टर के शब्दों में निश्चित हो गई और वेरा उसी बीमारी से मृत्यु को प्राप्त हुई। जिस दिन हम दोनों का वह क्षणिक मिलाप हुआ था, उस खतरनाक दिन के बाद वह एक पखवारे तक भी नहीं रह सकी ! मरने से पहले मैंने एक बार और उसे देखा था। ऐसी हृदयविदारक स्मृति मेरे लिए दूसरी कोई नहीं है। मुझे डाक्टर से पहले ही पता लग गया था कि उसके बचने की कोई आशा नहीं है। सन्ध्या को कुछ समय बीतने पर जब घर के सब लोग सोने चले गये, मैंने उसके कमरे के अन्दर चुपके-से दरवाजे से होकर प्रवेश किया और उसे देखा। वेरा बिछौने पर पड़ी हुई अपनी क्षीण और छोटी आंखें बन्द किये हुए थी और उसके कपोलों पर बुखार की-सी सुर्खी झलक रही थी। मैं पत्थर की मूर्ति की तरह टकटकी बांधे उसकी ओर देखता रहा। फिर एकबारगी उसने आंखें खोलीं और अपनी निगाह मुझपर गड़ाते हुए मुझे अच्छी तरह देखा। फिर अपनी दुर्बल बांहें आगे बढ़ाते हुए इस प्रकार भयानक स्वर में 'फाउस्त' कविता की ये दो पंक्तियां कहीं--

इस पवित्र स्थान पर
किसलिए आ गया यह व्यक्ति ?

मैं उसी क्षण वहां से भाग खड़ा हुआ। अपनी बीमारी की हालत में वह बराबर 'फाउस्त' और अपनी मां के विषय में, जिसे वह कभी मर्था और कभी ग्रेथेन की मां कहकर सम्बोधन करती थी, कुछ-कुछ कहती रही।

वेरा मर गई। मैं उसके दफन होते समय मौजूद था। उस समय से ही मैंने सबकुछ त्याग दिया है और सदा के लिए यहां बस गया हूं।

मैंने जो कुछ कहा है, उसपर अब तुम विचार करो, वेरा के सम्बन्ध में विचार करो, उस प्राणी के सम्बन्ध में, जो इतनी जल्दी सर्वनाश के पथ पर लाई गई। उसका यह सर्वनाश किस प्रकार हुआ, जीवित मनुष्यों के व्यवहार में मरे हुओं के इस विचित्र हस्तक्षेप को किस तरह समझा जाय, यह मैं नहीं जानता और कभी जानूंगा भी नहीं, पर इतना तुम्हें अवश्य मानना पड़ेगा कि कोरी सनक के कारण अचानक आवेश में आकर मैंने इस संसार से अलग हो जाने का संकल्प नहीं किया है। मैं अब पहले जैसा नहीं रहा, वैसा, जैसा कि तुम मुझे जानते थे। मैं अब ऐसी बहुत-सी बातों पर विश्वास करने लग गया हूं, जिनपर पहले मैं विश्वास नहीं करता था। इधर बराबर मैंने उस अभागी स्त्री के विषय में, (पहले में इसे युवती भी कह देता !), उसकी उत्पति के सम्बन्ध में उसके भाग्य के रहस्यपूर्ण खेल के सम्बन्ध में, जिसे हम मूर्ख मनुष्य अपनी मूर्खता के कारण 'संयोग' कहा करते हैं, बहुत अधिक विचार किया है। यह कौन जानता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में इस पृथ्वी पर कैसे बीज छोड़ जाता है, जिन बीजों का अंकुरित होना

उस मनुष्य की मृत्यु के बाद ही होता है ? यह कौन बता सकता है कि किस रहस्यपूर्ण बन्धन द्वारा एक-एक मनुष्य का भाग्य उसकी सन्तान और वंशजों के भाग्य के साथ बंधा रहता है, उसकी आकांक्षाएं किस प्रकार उनमें प्रतिबिम्बित होती रहती हैं और किस तरह उन्हें उसकी भूलों के लिए दंडित होना पड़ता है ? हम सबको उस 'अज्ञात' अखिलेश्वर की शरण में जाना चाहिए और उसके सामने अपना मस्तक झुकाना चाहिए।

हां, वेरा तो नष्ट हो गई और मैं ज्यों-का-त्यों बना रह गया ! मुझे याद है कि जब मैं बालक था, मेरे घर में एक सुन्दर बर्तन था, जो पारदर्शक, स्वच्छ, श्वेत पत्थर का बना हुआ था। उसकी स्वच्छता पर कहीं ज़रा भी धब्बा नहीं था। एक दिन अकेले में मैंने जिस चीज पर वह बर्तन रखा हुआ था, उसे हिलाना शुरू किया। अकस्मात् वह बर्तन गिर गया और चूर-चूर हो गया। मैं मारे डर के सुन्न हो गया और उस बर्तन के टुकड़ों के सामने निश्चल होकर खड़ा रहा। इतने में मेरे पिता वहां आये, मुझे देखा और मुझसे कहा, "देखो तो, तुमने यह क्या कर डाला ? अब वह सुन्दर बर्तन फिर कहां मिलेगा ? अब उसकी मरम्मत भी नहीं हो सकती !" मैं पश्चाताप करने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मैंने कोई घोर अपराध किया हो।

लड़कपन पार करके मैं बड़ा हुआ, और अब मैंने बिना विचारे उस बर्तन से हजार गुने अधिक कीमती बर्तन को तोड़ डाला।

व्यर्थ ही अब मैं अपने दिल को समझा रहा हूं कि इस प्रकार की आकस्मिक विपत्ति की मैंने स्वप्न में भी आशंका नहीं की थी।

इसकी आकस्मिकता ने मुझे भी आहत कर डाला और मैं इस बात का सन्देह भी नहीं कर सका कि वेरा किस प्रकृति की स्त्री थी। हां, अन्तिम क्षण तक मौन धारण किये रहना वह अवश्य जानती थी। जिस समय मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं उसे प्यार करता हूं--एक विवाहित स्त्री को प्यार करता हूं--उसी क्षण मुझे वहां से भाग जाना चाहिए था, किन्तु मैं ठहरा रहा और वह सुन्दर प्राणी चूर-चूर होकर नष्ट हो गया ! अब मैं अपनी करनी को हताश होकर देख रहा हूं। हां, यह अवश्य है कि श्रीमती येल्त्सोवा अपनी लड़की के विषय में बहुत सावधान थीं। अन्तिम समय तक उन्होंने अपनी लड़की की निगरानी की और भूल के मार्ग पर उसके प्रथम पग रखते ही वह उसे उठाकर अपने साथ क़ब्र में ले गई !

अब इस पत्र को समाप्त करने का समय आ गया है। मुझे जितना कहना चाहिए था, उसका शतांश भी मैंने नहीं कहा, परन्तु जो कुछ मैंने कहा है, वही मेरे लिए काफी है। मेरे अन्तर में जो भाव उद्भासित हो उठे हैं, वे अब फिर हृदय के अन्तःस्तल में ही विलीन हो जायंगे। अन्त में मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि पिछले सालों के अनुभव से मैंने जो विश्वास प्राप्त किया है, वह यह है कि जीवन हँसी-खेल या आमोद-प्रमोद की वस्तु नहीं है और न जीवन भोग की ही वस्तु है। जीवन कठोर परिश्रम है। त्याग--अनवरत त्याग--ही इस जीवन का रहस्यपूर्ण अर्थ है, इस समस्या का समाधान है। मनुष्य की चिर-पोषित महत्त्वाकांक्षाएं और कल्पना-तरंगें कितनी ही महान् क्यों न हों, परन्तु उनकी पूर्ति नहीं, बल्कि कर्त्तव्य की पूर्ति ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य

होना चाहिए। बिना अपने को कर्तव्यरूपी लौह-श्रृंखला से आबद्ध किये मनुष्य अपने जीवन के अन्त तक बिना किसी पतन के पहुंच नहीं सकता। परन्तु युवावस्था में हम सोचते हैं कि जितना ही स्वच्छन्द रहा जाय, उतना ही अच्छा है ; उतनी ही उन्नति आगे चलकर हम करेंगे। युवावस्था में इस प्रकार का सोचना क्षन्तव्य हो सकता है, परन्तु आखिर जब कठोर सत्य प्रत्यक्ष हो गया हो, उस समय अपने-आपको धोखा देना बहुत बुरा है।

.....

प्रणाम ! पहले जमाने में मैं इसके साथ-साथ इतना और जोड़ देता था कि खुश रहो, किन्तु अब मैं तुमसे कहता हूं कि जिन्दा रहने का प्रयत्न करो। जीवन धारण करना उतना सहज नहीं है, जितना कि मालूम पड़ता है। मेरे विषय में, शोक की घड़ियों में नहीं, बल्कि ध्यान की घड़ियों में विचार करो और अपने हृदय-पटल पर वेरा की विशुद्ध निष्कलंक मूर्ति को निरन्तर अंकित रखो। एक बार फिर प्रणाम !

तुम्हारा

प० ब०

●